

# महावीरशुद्धक-प्रवचन

उपाध्याय अमरमुनि

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

# महावीराष्टक-प्रवचन

प्रवचनकार  
राष्ट्रसंत प्रज्ञापुरुष उपाध्याय  
अमर मुनि

संकलन-संपादन  
साध्वी संप्रज्ञा

एम. ए. (प्राकृत), संस्कृत-साहित्य-रत्न

प्रकाशक  
सन्मति ज्ञानपीठ  
जैन भवन, लोहामण्डी, आगरा (उ. प्र.)

**पुस्तक**

महावीराष्टक-प्रवचन

**प्रवचनकार**

उपाध्याय अमरमुनि

**प्रेरणा**

विजयमुनि 'शास्त्री', साहित्यरत्न

**संकलन/संपादन**

साध्वी संप्रज्ञा

एम. ए. (संस्कृत), संस्कृत-साहित्य रत्न

**प्रकाशक**

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

**प्रकाशन-अवधि**

महावीर जयन्ति, १९९७

**मूल्य**

दस रुपए मात्र

@ सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

**मुद्रक**

रतन आर्ट्स, आगरा-२८२ ००२

## प्राक्कथन

भक्त कवि भागचन्द्र जी ने भगवान् महावीर पर एक लघु स्तोत्र की रचना की है, जिसका नाम है—श्री महावीराष्टक ! भागचन्द्रजी दिगंबर परम्परा के विद्वान् हैं। उन्होंने अपनी उसी परम्परानुसार इस स्तोत्र की संरचना की। श्वेताम्बर-परम्परा भगवान् महावीर का विवाह स्वीकार करती है और भगवान् के एक पुत्री भी थी किन्तु दिगंबर-परम्परा भगवान् महावीर के विवाह और पुत्री-जन्म को स्वीकार नहीं करती। इस विवाद को छोड़कर शेष स्तोत्र की गाथाएँ भक्ति-भावना से संपूरित हैं।

स्तोत्र-स्तुति साहित्य में अष्टकों का विशिष्ट स्थान है। अनेक जैनाचार्यों ने अष्टक लिखे। उन आचार्यों में आचार्य हरिभद्र सूरि प्रसिद्ध हैं जिन्होंने ३२ अष्टकों की रचना की है। उसमें भगवान् महावीर का भी एक अष्टक है जो आर्याछन्द में निबद्ध है।

भागचन्द्रजी ने शिखरणी जैसे बड़े छन्द में भगवान् महावीर की स्तुति की है। इनकी शैली सरस, सुन्दर और भावपूर्ण है। कहीं पर भी समासान्त पदों का प्रयोग नहीं किया है अतः इस स्तोत्र में प्रसाद गुण विशेषरूपेण प्रस्फुटित हुआ है।

स्तोत्र-परम्परा के अंतर्गत आचार्य मानतुङ्ग तथा आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने भी महान् स्तोत्रों की रचना की। अंतर यह है कि आचार्य मानतुंग ने भगवान् ऋषभदेव पर स्तोत्र-रचना की वह अत्यंत लोकप्रिय हुई। यह स्तोत्र भक्ति प्रधान है। अपने आराध्य के प्रति भक्त कवि मानतुंग ने भावना की जो मधुर गंगा प्रवाहित की है वह वस्तुतः प्रशंसनीय है। इसका नित्यप्रति पाठ भी किया जाता है एवं दिगंबर-श्वेताम्बर-परंपरा में समानरूपेण आदृत है। सिद्धसेन दिवाकर ने भगवान् पार्श्वनाथ को अपने स्तोत्र का विषय बनाया है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर अपने युग के महान् दार्शनिक और तर्कवादी थे। अतः भक्तामर-स्तोत्र की अपेक्षा कल्याण-मन्दिर अधिक गंभीर है और भाषा की अपेक्षा से भी क्लिष्ट है। अतः सामान्य जनता में उतना लोकप्रिय नहीं बन पाया जितना कि भक्तामर ! पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज ने दोनों स्तोत्रों पर हिन्दी में विशेष व्याख्या की है।

स्तोत्र-साहित्य में सर्वप्रथम स्तोत्र/स्तुति की रचना पंचम गणधर सुधर्मा स्वामी ने की है जो वीरस्तुति के नाम से प्रसिद्ध है। सूत्रकृताङ्ग सूत्र के छोटे अध्ययन के रूप में २९ गाथाओं की प्राकृत भाषा में जो स्तुति की है वह अत्यंत भावप्रवणता लिए हुए है। तदनंतर आचार्य भद्रबाहु कृत 'उपसर्गहर स्तोत्र' है जो जैन समाज में अत्यन्त प्रचलित है। 'वीर स्तुति' पर भी पूज्य गुरुदेव ने पद्यानुवाद और गद्यात्मक विवेचन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है।

चितामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र/किं कर्पूरमयं ..... की रचना किस कवि ने की यह आज तक ज्ञात न हो सका परन्तु यह स्तोत्र इतना सरल और इतना सुबोध है कि संस्कृत का सामान्य विद्यार्थी भी आसानी से समझ सकता है। पूज्य गुरुदेव ने इस स्तोत्र पर भी प्रवचन दिये हैं जो अभी अप्रकाशित है। इस प्रकार अन्य शताधिक स्तोत्र जैन परंपरा में प्रचलित है और उनका नित्य प्रति पाठ किया जाता है।

यद्यपि जैन परंपरा भक्तिवादी नहीं है। वह आचारवादी रही है तथापि बिना भक्ति के मनुष्य का मानस आनन्दानुभूति नहीं कर सकता। अतः भक्तिवाद-धारा का प्रस्फुटन वैदिक परंपरा की ही देन है उसका अनुसरण जैनाचार्यों ने समय-समय पर किया है। बौद्ध परंपरा में भी अनेक स्तोत्र हैं जो तथागत बुद्ध तथा बौद्ध परंपरा में मान्य तारादेवी पर हैं। भाषा संस्कृत है। महाकवि अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित में पूरा एक सर्ग ही बुद्ध-महिमा में गुम्फित कर दिया है। अस्तु !

भगवान् महावीर की स्तुति अष्टक पर पूज्य गुरुदेव ने जो प्रवचन दिये थे उनका संकलन/संपादन साध्वी संप्रज्ञा ने किया है। साध्वी संप्रज्ञा आचार्य चंदनाजी की शिष्या है तथा अध्ययनादि में विशेष अभिरुचि रखती है। उन्होंने पूरे परिश्रम के साथ इसका जो संकलन/संपादन किया है उसके पठन से यह स्तोत्र लोकप्रियता को अवश्य ही प्राप्त होगा एतदर्थ मैं साध्वी संप्रज्ञा जी को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ और आशान्वित हूँ कि भविष्य में भी वह अपना योगदान प्रदान करती रहेंगी।

विजयमुनि 'शास्त्री'  
साहित्यरत्न

महावीर जयन्ति १९९७  
वीरायतन  
राजगीर

## प्रकाशकीय

श्री महावीराष्टक-प्रवचन का मुद्रण करके आपके कर-कमलों में पहुँचाते हुए हमें अपार प्रसन्नतानुभव हो रहा है। इसका श्रेय जाता है—पण्डित रत्न विद्वद्वर्य श्री विजयमुनि जी महाराज को। उन्होंने ही वीरायतन में रहते हुए हमें यह सामग्री संप्रेषित की है। एतदर्थ हम गुरुदेव श्री के आभारी हैं।

सन्मति-ज्ञानपीठ, आगरा, हमेशा ही गुरुदेव श्री के प्रवचन-साहित्य का प्रकाशन एवं वितरण करता आ रहा है। प्रस्तुत प्रवचन-कृति—“महावीराष्टक-प्रवचन” सभी के लिये समान रूपेण उपयोगी है। यह कृति भगवान् महावीर के जीवन को व्याख्यायित करने में सक्षम है। गुरुदेव श्री की प्रवचन शैली ने भगवान् महावीर के व्यक्तित्व, साधना और सिद्धान्तों को स्पष्टतः जनता जनार्दन के समक्ष रखा है।

महावीराष्टक के बाद इस पुस्तिका में अमराष्टक और चन्दनाष्टक का भी मुद्रण किया गया है, जिसे पढ़कर सुधि भक्तगण आनन्दित एवं उल्लसित होंगे। जन-सामान्य हेतु उसका भावार्थ भी हिन्दी में दे दिया गया है।

आशा है भक्तजन, पाठकगण अवश्य ही इसका परायण करेंगे और भक्ति की सरिता में निमज्जित होंगे।

ओयप्रकाश जैन

मंत्री

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

## प्राथमिक बिन्दु

जैन संस्कृत-साहित्य के अन्तर्गत स्तोत्रों की परम्परा अत्यन्त समृद्ध रही है। सहस्रों विविध स्तोत्र हैं जिनके माध्यम से भक्त कवियों ने अपने-अपने आराध्य के प्रति श्रद्धाभाव अर्पित किये हैं। स्तोत्र, स्तुति साहित्य का ही एक अभिन्न अंग है।

कविवर्य श्री भागचन्द्र 'भागेन्दु' कृत 'महावीराष्टक स्तोत्र' एक भावपूर्ण रचना है। इसकी लोकप्रियता इस कदर बढ़ी कि यह स्तोत्र अल्प समय में ही भक्तजनों के कण्ठ पर आरुढ़ हो गया।

प्रस्तुत कृति 'महावीराष्टक-प्रवचन' इसी स्तोत्र की व्याख्यात्मक कृति है। प्रवचनकार हैं—परम श्रद्धेय उपाध्याय राष्ट्रसंत श्री अमरमुनि जी महाराज। श्रद्धेय गुरुदेव हृदय से कवि, बुद्धि से दार्शनिक और आचरण से साधक थे। कवि, दार्शनिक और संत के स्वरूप का त्रिवेणी संगम था उनमें। दूसरे शब्दों में—वे हृदय से भक्तयोगी थे, बुद्धि से ज्ञान योगी और आचरण से कर्मयोगी थे। अर्थात् वे बुद्धिवादी थे, भक्तिवादी और ज्ञानवादी भी। तीनों योगों का उनमें समन्वय था। जैन परिभाषा में इसी को रत्नत्रयी कहा जाता है। बौद्ध परंपरा में इसी रत्नत्रयी को शील, समाधि और प्रज्ञा कहा गया है। गीता में इसी रत्नत्रयी को ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग कहा गया है।

उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज अपने युग के महान् प्रवक्ता, लेखक, साधक थे। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने धर्म, दर्शन, योग, तर्क आदि विषयों पर अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया है। गुरुदेव की विशेषता थी कि वे अनेकाङ्गी रहे, एकाङ्गी कभी नहीं बने। अनेकान्त उनका ध्येय था, अहिंसा उनका आचरण था और स्याद्वाद उनकी भाषा थी। श्रद्धा और तर्क का समन्वय था उनकी साधना में।

श्री महावीराष्टक स्तोत्र के प्रत्येक श्लोक की परम श्रद्धेय गुरुदेव ने प्रवचनों के माध्यम से सुन्दर व सटीक व्याख्या की है। यह अनूठी कृति है। ये हृदयस्पर्शी प्रवचन गुरुदेव ने वीरायतन में दिये थे।

इन प्रवचनों का आलेखन व संपादन श्रद्धेय आचार्य श्री चन्दना श्री जी की शिष्या साध्वी श्री संप्रज्ञा जी ने किया है। उन्हें किन शब्दों में साधुवाद दूँ, शब्द नहीं मिल पा रहे हैं। आशा है भविष्य में भी अन्य प्रवचनों का संकलन/संपादन करके प्रवचन-साहित्य में अभिवृद्धि करेगी।

श्री महावीराष्टक के अतिरिक्त इसमें अन्य दो अष्टक भी हैं—श्री अमराष्टकम् और श्री चन्दनाष्टकम्। रचयिता हैं—प्रोफेसर श्री राममोहन दास, एम्. ए., पी. एच्-डी., डी. लिट्। यद्यपि प्रोफेसर आर. एम्. दास को गुरुदेव के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ तथापि उनके साहित्य का अध्ययन-मनन करके उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व से प्रभावित होकर के उन्होंने 'अमराष्टकम्' की सुन्दर-सरस-सलिल संस्कृत भाषा में रचना की है। चन्दनाष्टकम् की रचना उन्होंने आचार्य श्री चन्दना जी के ६२ वें जन्मोत्सव के पावन प्रसंग पर की है। ये दोनों अष्टक भी इन अष्टकों की परम्परा में जुड़ गये हैं। भक्तजन इन्हें भी कण्ठाग्रकर अपनी भक्ति को और अधिक प्रगाढ़ बनाएंगे ही। इसी में साध्वी श्री के संकलन/संपादन का श्रम सार्थक होगा।

**भद्रेश कुमार जैन**

एम्. ए. साहित्य रत्न, पी. एच्-डी.

वीरायतन, राजगीर—८० ३११६



गुरुदेव अमरमुनि की  
पावन प्रवचन धारा!  
आकण्ठ करे अवगाहन तो  
धूल जाये कलिमल सारा,

—आचार्य चन्दना

## महावीराष्टक-प्रवचन

### पूर्व-शीठिका

जैन-परंपरा मूलतः भक्ति-रस से अस्पृष्ट न रह सकी। रह भी नहीं सकती। क्योंकि जब तक मानव का हृदय रसविशेष से आप्यायित न हो, तब तक वह अपने आराध्य एवं साध्य को कैसे स्पर्श कर सकता है? आराध्य की आराधना और साध्य की साधना भक्ति-रस से ही संभव है।

यह कथन अतिशयोक्तिभरा नहीं है कि निष्ठावान् प्रभु-भक्त का हृदय यथासमय भक्तिरसामृत का लहराता, गरजता सागर है। उस सागर से भक्ति अपने को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है तो कोई दिव्य रचना जन्म लेती है। क्या पुरातन युग, क्या मध्य युग, क्या वर्तमान युग—हर युग में महान् आचार्यों ने भक्ति-रचना की है। भक्ति-रचनाओं ने इतना विशाल रूप ले लिया है कि उसका साहित्यिक विधा में अपना एक पृथक् स्थान बन जाता है। भक्ति साहित्य की अनेक ऐसी विशिष्टतम रचनाएँ हैं जिनमें भक्तहृदय की कामनाएँ गूँथी गई हैं। अपने आराध्य की चरणवंदनाएँ, स्तुतिगान एवं महानता की यशोगाथा गाते-गाते अपने लिए भी माँग लिया है, अपना अभीप्सित। “आरुग्ग बोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिन्तु।” आरोग्य, बोधि लाभ तथा उत्तम-श्रेष्ठ समाधि प्राप्त हो ऐसी भावना व्यक्त की है; सुमधुर स्वरो में की गई प्रार्थना भक्ति-साहित्य की श्रेष्ठ रचना है। ‘महावीराष्टक स्तोत्रम्’ भक्तराज भागेंदु (भागचन्द्र) की रचना है।

भगवान् महावीर आप्त पुरुष हैं। उनके जीवन-संदेश से दर्शन एवं धर्म की जो चितन-धारा प्रवाहित हुई है उसे अपनी छोटी-सी रचना में रचनाकार ने गूँथ दिया है। उनकी मंगल-प्रार्थना में न ऐश्वर्य की मांग है, न संकट-मुक्ति का निवेदन है, न स्वास्थ्य-लाभ की प्रार्थना है। किसी प्रकार भी कोई याचना, कामना नहीं है। एक ही प्रार्थना है ‘भगवान मेरे नयनों में समा जाएं’। यह प्रार्थना ऐसी प्रार्थना है जैसे कोई सागर से प्रार्थना करे, ‘तू मेरी गगरिया में आ जा।’ प्रार्थना तो प्रार्थना है। भक्त नहीं सोचता है—‘ऐसा हो सकता है? सागर को गागर में समाते कभी देखा है?’ भक्तहृदय इन विकल्पों से परे हैं। संसार में ऐसा कुछ

सत्य हो या न हो इससे उन्हें कोई मतलब नहीं होता है। उनके अंतर्हृदय की भाव-भाषा ही सत्य है।

मात्र आठ श्लोकों की लघु रचना के प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण में भक्तहृदय भागचंद्र की दिव्य भावना का पुनः-पुनः संगान है—“महावीर-स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे।” यह पुनरुक्ति काव्य-दोष नहीं है। भक्त का एक उत्कट भाव है जो उसके हृदय-घट से छलक-छलक जा रहा है। भक्ति का पूर्ण रूप है—भक्त में भगवान का समा जाना, सिंधु का बिन्दु में अवतरित होना। उस अद्भुत, पूर्ण रूप की अभिव्यक्ति है यह पुनरुक्ति।

भक्ति की वेला में स्वर भक्ति से भर गए हैं। ऐसे में भक्तराज किन आँखों की बात कर रहे हैं? जगत् हमें जिन आँखों से देख रहा है और हम जगत् को जिन आँखों से देख रहे हैं, उन आँखों की चर्चा है क्या? भागचंद्र चतुरिंद्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीवों को प्राप्त शरीर की आँखों की बात क्या करेंगे? शरीर की ये आँखें प्रकृति के सूर्य को देखने में चौंधिया जाती हैं तो जो सूर्यातिशायी है, हजार-हजार सूर्यों से भी अधिक जाज्वल्यमान है, उसे क्या देखेंगी? आँखें बहुत बड़ी विशाल चीजों—समुद्र पर्वत आदि—जिन्हें नापा जा सकता है, उन्हें भी एक नजर में नहीं देख पाती, तो असीम है विराट् है उसे कैसे देख पाएंगी? ये आँखें निद्रा में बंद होने पर कैसे देखेंगी? ये आँखें कितनी दूर तक का देख पाएंगी? बीच में दीवार आ जाए तो कम दूरी की वस्तु भी नहीं दिख पाती है तो क्षेत्रातीत को क्या देख पाएंगी?

आँख कौन-सी? असीम को, प्रकाशमान को सदा-सर्वदा अपलक देखने वाली हृदय की आँख, आँख है। भक्ति की आँख से, प्रभुप्रीति की आँख से देखा जाता है परमात्मा को। समयातीत, क्षेत्रातीत, नामातीत, रूपातीत परमात्मा को देखें और उसे समा लें अपने में; ऐसे दिव्य अन्तश्चक्षु, ऐसे विलक्षण अंतर नयन हैं भक्त के। भक्त अपने नयन-कमलों के सिंहासन पर विराजमान करता है भगवान को।

प्रस्तुत रचना एक दिव्य माला है। भक्ति के अत्यधिक कोमल, नाजुक, सूक्ष्म भावों के सूत्र में भगवान् महावीर के जीवन-संदेश के सुरभित पुष्प बड़ी सुंदर काव्यात्मक शैली से एवं चिंतनपूर्ण कुशलता से पिरोए गए हैं।

प्रथम श्लोक में है—भगवान् महावीर अनंत ज्ञानी हैं। उनके ज्ञान में लोकालोक के समग्र पदार्थ झलकते हैं। उनके लिए रहस्य जैसा कुछ नहीं है वे जगत् के मात्र साक्षी हैं। उन्होंने साक्षी भाव को मुक्ति का मार्ग बताया है।

द्वितीय श्लोक में है—भगवान् महावीर कषायों से मुक्त हैं। परम विशुद्ध अर्हत् हैं।

तृतीय श्लोक में है—भगवान् महावीर देवताओं के भी देवता हैं, देवाधिदेव हैं।

चतुर्थ श्लोक में है—भगवत्-भक्ति से भगवत्ता पाई जाती है का दिव्य संदेश।

पंचम श्लोक में है—परस्पर विरोधी लगने वाले विलक्षण रूप भगवान् महावीर के जीवन में अविरोध भाव से उपस्थित हैं।

षष्ठ श्लोक में है—भगवान् महावीर के श्रीमुख से प्रवाहित पावन गंगा संसार के कलिमल को विशुद्ध, निर्मल करने वाली है।

सप्तम श्लोक में है—महावीर ऐसे जिन अर्थात् विजेता हैं, जिन्होंने अपने ही पुरुषार्थ से विकारों के दलदल को समाप्त करके परम नित्यानंद को पाया है।

अष्टम श्लोक में है—भगवान् महावीर आधि-व्याधि-उपाधि को समाप्त करने वाले महातिमहान् वैद्य हैं। वे निरपेक्ष भाव से जगत् के आनंद-मंगल करने वाले हैं। एक मात्र शरण्य हैं।

ऐसे प्रशस्त भावों में जो भी भक्त भगवत् भक्ति करेगा, भक्ति-स्तोत्र का श्रवण करेगा वह निश्चित ही परम पद को प्राप्त करेगा।

पथ है साक्षीभाव, पाथेय है निरपेक्ष बंधुत्व। पथिक भक्त भगवत्-भक्ति, भगवत्-वाणी को हृदयस्थ करते हुए काम-सुभटों से पराजित न होते हुए अपने ही पुरुषार्थ के बल पर चलेगा, वह कैवल्य-ज्योति को पाकर ज्योतिर्मय बनेगा ही।

प्रातः काल की मंगलवेला-भगवत् स्मरण की वेला है। यह पवित्र समय है, क्योंकि भगवत् स्मरण से भगवान् की स्मृति में भाव कुछ और के और हो जाते हैं। प्रार्थना के लिए यहाँ तक व्यक्ति आता है कुछ और होता है और प्रार्थना में, प्रभु स्मरण में वह कुछ और ही हो जाता है। “हूँ मैंनु कौन पहचाने, मैं तो गया और का और।” अब मुझे कौन पहचानेगा मैं तो कुछ और ही हो गया—यह बात शत प्रतिशत सत्य है, देवाधिदेव के दर्शन होते हैं, गुरु के दर्शन होते हैं, तो उस दर्शन से कुछ होना चाहिए। बात तो बाद में, दर्शन पहले। दर्शन होते ही भाव-गंगा बहकर उसमें असंख्य-असंख्य भावतरंगों का संगीत प्रकट होता है—

अद्याभवत् सफलता नयनद्वयस्य,  
 देव ! त्वदीय चरणाख्युजवीक्षणेन ।  
 अद्य त्रिलोकतिलक ! प्रतिभासते मे,  
 संसारवारिधिरयं चुलकप्रमाणम् ॥

आज नयन पाने की सफलता मिली है । आपश्री के दर्शन पाए, अब तो अनंत संसार-सागर भी मेरे लिए चुल्लू भर रह गया ।

यह भट चारणों की वाणी नहीं है । यह खुशामद नहीं है । स्वामी के साधारण जीवन को महान् बनाकर उससे कुछ पाने की कामना नहीं है । भक्ति की सहज तल्लीनता ऐसी अनोखी है कि प्रभु आँखों में समा गए, उस भक्त की यह वाणी है ।

सितार के तार स्वरो से भरे होते हैं । अंगुलियां छू जाती हैं, तार झनझनाते हैं और बस, मधुर संगीत बज उठता है । भक्तिप्रवण हृदय में प्रभु की स्मृति आई और काव्य प्रस्फुटित हुआ ।

\*\*\*

..... भवतु मे

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,  
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।  
जगत्-साक्षी मार्ग-प्रकटनपरो भानुरिव यो,  
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ १ ॥

जिनके केवल ज्ञान-रूपी दर्पण में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य त्रिविध रूप से युक्त अनन्तानन्त जीव और अजीव पदार्थ एक साथ झलकते रहते हैं, जो सूर्य के समान जगत् के साक्षी हैं और सत्य-मार्ग का प्रकाश करने वाले हैं, वे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा मेरे नयन-पथ पर विराजमान् रहें ।

यह सहज प्रस्फुटित काव्य है । तभी तो गहन गंभीर तत्त्वदर्शन एवं चिंतन की गहराई, भक्तिभाव से भरपूर इन थोड़े से शब्दों में व्यक्त हुई है ।

विश्व की अनंतानंत आत्माएँ मूलतः ज्ञानस्वरूप हैं । आत्मा की यह विशिष्ट ज्ञान-शक्ति ही अनंतानंत जड़ पदार्थों से आत्मतत्त्व का पृथक्करण करती है । किंतु आत्माओं की ज्ञानशक्ति की हानि-वृद्धि होती रहती है, एकस्वरूपता नहीं रहती है । इसका कारण है, ज्ञानावरण कर्म का उदय । ज्ञानावरण कर्म ज्ञानज्योति को न्यूनार्धिक रूप से आच्छादित किए रहता है । उच्चतर निर्विकल्प ध्यान-साधना की भूमिका पर पहुँचने पर ज्ञान-शक्ति पूर्णतया निरावरण हो जाती है । शास्त्रीय भाषा में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार घातिकर्म हैं जो आत्मा के शुद्ध स्वरूप का घात कर देने वाले हैं । जब साधक चारों घातिकर्मों से मुक्त हो जाता है, अन्य शक्तियों के शुद्ध होने के साथ ज्ञानशक्ति भी पूर्णतया, सर्वथा निरावरण स्थिति में पूर्णरूपेण शुद्ध हो जाती है । ज्ञान की इस स्थिति को 'केवल ज्ञान' कहते हैं । केवल ज्ञान, देश और काल की किसी भी सीमा में अवरुद्ध नहीं होता । वह सदा-सर्वदाकाल के लिए अनंत हो जाता है ।

विश्व के अर्थात् लोकालोक के समग्र चैतन्य और जड़ पदार्थ अपने-अपने अनंत गुण और पर्यायों के साथ केवल ज्ञान की इस अनंत ज्योति में एक साथ झलक उठते हैं । अज्ञात जैसी कोई भी वस्तु शेष नहीं रहती है । आचार्य

अमृतचंद्र ने इसी अर्हत् भाव की ज्ञान-ज्योति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है—

तज्जयति परंज्योतिः, समं समस्तैरनन्तपर्यायैः ।

दर्पणतल इव सकला, प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥

आत्मा की ज्ञान-ज्योति के लिए दर्पण की उपमा एकदेशीय उपमा है। केवल इतना ही स्पष्ट करती है कि जैसे दर्पण-तल पर वस्तु झलक जाती है, इसी प्रकार केवल ज्ञान में भी झलक जाती है। दर्पण में वस्तु तत्त्व का झलकना सीमित रूप से होता है। किन्तु केवल ज्ञान-रूप असीम अनंत चैतन्य दर्पण में रूपी, अरूपी, चैतन्य और जड़ विषयक सभी पदार्थ झलकते हैं।

उपर्युक्त अनंत चित्-शक्ति अर्हद् भावापन्न अनंतज्ञानी तीर्थकर भगवान् महावीर की महिमा का गान करते हुए कहते हैं—

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,

समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।

जिसके चैतन्य में दर्पण के समान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वरूप से युक्त चित् और अचित् अनंत पदार्थ एक साथ प्रतिबिंबित होते हैं। उत्पाद आदि स्वरूपत्रयी से अनंत पर्यायों के साथ पदार्थों का यह झलकना होता है।

जैन-दर्शन में जड़-चेतन सभी पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वरूप से युक्त होते हैं। प्रत्येक पदार्थ का पूर्व पर्याय नष्ट होता है। उत्तर पर्याय उत्पन्न होता है। फिर भी द्रव्य सत् रूप से ध्रुव अर्थात् अविनाशी रहता है। लेकिन लौकिक दृष्टि ये यदि उदाहरण से समझना चाहें तो उक्त भाव को इस प्रकार समझ सकते हैं—स्वर्णहार को तोड़ कर उसका कंगन बना दिया जाए तो स्वर्ण का हार रूप पर्याय विनष्ट हुआ है और कंगन पर्याय रूप उत्पन्न हुआ है, किन्तु स्वर्ण (द्रव्य) के रूप में स्वर्ण ज्यों का त्यों ध्रुव है। स्वर्ण का स्वर्णत्व न उत्पन्न हुआ है और न ही नष्ट हुआ है। यह एक लोक-दृष्टि का उदाहरण है। जैन-दर्शन की दृष्टि से उत्पाद आदि स्थिति प्रत्येक पदार्थ में क्षण-क्षण होती रहती है। सूक्ष्म तात्त्विक दृष्टि को स्वर्ण के स्थूल तत्त्व की उपमा देकर समझाने का यह एक साधारण प्रयत्न है। स्तुतिकार उपर्युक्त भाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

अनंत चैतन्य स्वरूप के धारक, समग्र लोकालोक के पदार्थ के ज्ञाता-द्रष्टा भगवान् महावीर जगत् के साक्षी हैं। परम चैतन्य भाव को प्राप्त परमात्मा स्वरूप आत्माएं जगत् की कर्ता नहीं होतीं। मात्र साक्षी हैं। प्रस्तुत साक्षी रूप से बंधन-मुक्ति का अबाधित सत्य मार्ग प्रकट करने वाले हैं। यह मार्ग है—साक्षी भाव अर्थात् वीतराग भाव।

साक्षी के स्वरूप को उपमा के द्वारा स्पष्ट करते हुए सूर्य की उपमा दी है। सूर्य क्षितिज पर जब प्रातः काल दिनारंभ के समय उदित होता है तो उसके उदय होते ही सरोवरों में रातभर के मुरझाए हुए कमल-पुष्प खिल उठते हैं, महक उठते हैं। गुंजन करती हुई भ्रमरों की टोलियों का आगमन शुरु होता है। इस प्रक्रिया में आप देख सकते हैं कि सूर्य का क्या कर्तव्य है? सूर्य की एकमात्र उपस्थिति रूप साक्षीभाव है। इस प्रकार के साक्षीभाव को यदि कर्ता के रूप में उपन्यस्त किया जाए, तो यह मात्र निमित्त कर्तव्य है, प्रेरक कर्तव्य नहीं है। ऐसा नहीं होता कि सूर्य कमल की एक-एक पंखुड़ी को खोल-खोलकर उसे खिलाने का प्रयत्न करता है। वह तो अपनी प्राकृतिक स्थिति के रूप में समय पर क्षितिज पर उपस्थित हो जाता है, प्रेरक रूप में कुछ नहीं करता। उसकी उपस्थिति ही ऐसी है कि कमल अपने-आप खिलने लगते हैं। कमल के खिलने से सूर्य को हर्ष नहीं होता और किसी विशेष स्थिति में खिल नहीं पाते, तो वह अप्रसन्न नहीं होता है। वह तो तटस्थ भाव की स्थिति में एकस्वरूप बना रहता है।

भगवान् महावीर भी ऐसे ही आध्यात्मिक सूर्य हैं। समय-समय पर उनके द्वारा देशना की ज्योतिस्वरूप प्रकाश की धारा प्रवाहित होती है। कुछ आत्माएं आत्म-बोध पाती हैं, कुछ नहीं भी पाती हैं। किंतु भगवान् महावीर न किसी पर प्रसन्न हुए, न किसी पर अप्रसन्न। वे हर स्थिति में तटस्थ रहे। अखंड वीतराग भाव में स्थित रहे। यह कितना महतो महीयान् तटस्थ साक्षीरूप वीतराग भाव है। यह विशुद्ध साक्षीभाव हर साधक के अंतर में जागृत हो और वह इस प्रकार स्वरूप एकत्व भाव में लीन होता हुआ प्रभु चरणों में अभ्यर्थना करता रहे कि यह अनंत साक्षी वीतराग निरंजन निर्विकार महावीर मेरे अंतर चक्षु में समाहित हो जाए अर्थात् मेरे अन्तस् में महावीर जैसा ही वीतराग भाव जागृत हो जाए।

\*\*\*



..... भवतु मे

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्दरहितं,  
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाऽध्यन्तरपि ।  
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला,  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ २ ॥

जिनके लालिमा से रहित अचंचल नेत्र-कमल, दर्शक जनता को, अन्तर्हृदय के क्रोधाभाव की अर्थात् समभाव की सूचना देते हैं, जिनकी ध्यानावस्थित प्रशान्त वीतराग-मुद्रा अतीव शुद्ध एवं पवित्र मालूम होती है, वे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें ।

आँखों के लाल और चंचल होने में मनुष्य के मन का क्रोध ही कारण बनता है । भगवान् की आँखों का लाल और चंचल न होना सूचित करता था कि भगवान् महावीर स्वामी क्रोध के आवेश से रहित हैं, पूर्णरूप से शांत हैं । जब कारण ही नहीं तो कार्य कैसा ?

पूर्णिमा की रात थी, स्वच्छ चाँदनी छिटकी हुई थी । एक बालक अपने बगीचे में घूम रहा था । वह एकाएक दौड़ा-दौड़ा घर में आया और अपना पेंटिंग का सामान ले, जो अद्भुत दृश्य बगीचे में देखा, उसे पेंट करने लगा । उसने साध-सुधरे सफेद वस्त्र पर बहुत सुन्दर दृश्य चित्रित किया । किंतु बहुत परेशान था । पूछा गया उससे “क्या हुआ ? क्यों परेशान हो ?” उसने बताया—“मैंने इस चित्र में और सब तो ठीक बना लिया पर शुभ्र चाँदनी का चित्र नहीं बना पा रहा हूँ उसे कैसे बनाऊँ ?” वह बार-बार आसमान की तरफ देखता है, उस शुभ्र चाँदनी को चित्रित करना चाहता है, रंग भरता है किंतु चाँदनी का चित्र बना नहीं पाता है । आपसे भी पूँछें तो आप क्या जवाब देंगे ? उसने सबसे पूछा, फिर भी समाधान नहीं मिला । अंततः उसने गुरु से पूछा—गुरु हँसने लगे । गुरु ने कूची ली, जहाँ कहीं थोड़ा-बहुत अधूरा था, उसे पूरा किया । जहाँ चाँदनी बिछी हुई

दिखानी थी वह जगह यूँ ही छोड़ दी। कोई रंग भरा ही नहीं। शिष्य गुरु की इस विलक्षण कला को देखकर आश्चर्य से बोल उठा—“अहा..... कोई रंग तो भरा नहीं, और चाँदनी का चित्र बन गया।”

हम सभी उस बालक की भूमिका के चित्रकार हैं। परम विशुद्ध निर्मल आत्मा का चित्र बनाना चाहते हैं और सोचते रहते हैं—किस रंग से चित्र बनाएं प्रयत्न करते हैं, अलग-अलग रंग भरते जाते हैं। कभी हल्का, कभी गहरा, लाल, पीला, नीला—अनेकानेक प्रकार से अनेकानेक जन्मों से रंग भरते ही आए हैं। फिर भी आत्मा विशुद्ध नहीं बनी।

गुरु कहता है रंग ही मत भरो, कोई रंग नहीं, न राग का रंग, न द्वेष का रंग, न क्रोध का रंग, न माया का रंग, न लोभ का रंग, न मोह का रंग, न क्षोभ का रंग, न विकारों का रंग, हल्का भी नहीं, गहरा भी नहीं, कोई रंग नहीं। निरंग ही रखो, वह रंग से शून्य ही है।

सैद्धांतिक रूप से भी इसे समझ लें। योग के माध्यम से, कषाय से अनुरंजित आत्म-परिणति लेश्या है। कषाय से अनुरंजित अर्थात् रंगी हुई आत्म-परिणति लेश्या है। लेश्याएं छह हैं। कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुल्क लेश्या। नामों से स्पष्ट होता है कि उनके रंग के अनुसार लेश्याओं के ये नाम हैं।

कृष्ण लेश्या का काला रंग, नील लेश्या का नीला रंग, कापोत लेश्या का कबूतर जैसा चितकबरा रंगा, तेजो लेश्या का लाल, पद्म लेश्या का पीला और शुक्ल लेश्या का सफेद रंग है।

एक गाँव में एक दरिद्र व्यक्ति था। उसके पास था तो कुछ नहीं, पर बहुत कुछ पाना चाहता था। घर की दयनीय स्थिति से तंग आकर पत्नी भलाबुरा कह देती। वह परेशान होकर प्रयत्न भी करता रहा, पर कमा नहीं पाया। एक दिन किसी गुरु के पास गया। बहुत रोया। अपनी स्थिति की कहानी सुनाते-सुनाते रोता जा रहा है, चरण पकड़ लिए गुरु के और विनीत करता है—गुरु! ऐसा कुछ कर दो, कुछ करना न पड़े और बहुत सारा धन पा लूँ। धन मेरे पास नहीं और मेहनत करना मुझे अच्छा नहीं लगता। काम तो मैं कुछ नहीं जानता। पर गुरु ऐसी कृपा करो मुझ पर कि धन के अंबार लग जाएँ मेरे घर में। उससे तंग आकर गुरु ने मंत्र दिया, और कहा इस मंत्र का जाप करो, देवता प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देंगे।

मंत्र जाप करता रहा वह, देवता को भी दया आ गई। प्रसन्न हुए उस पर और वरदान दिया—“जो तुम चाहोगे वह मिल जाएगा। पर ध्यान रखना, तुम्हारे

पड़ोसी को दुगुना मिलेगा। फिर क्या था, दरिद्र प्रसन्नता से नाचता हुआ आया और सबसे पहले उसने रहने के लिए सुंदर मकान मांगा, मकान मिला। भोजन मांगा, भोजन मिला। जितना उसने अपने लिए मांगा पड़ोसी को उससे दुगुना मिला। जो-जो मांगता गया वह मिलता रहा, लेकिन वह फिर भी परेशान रहने लगा। पहले अपने पास कुछ था नहीं इसलिए परेशान रहा, अब पड़ोसी के पास अपने से दुगुना होने से परेशान है। सोचता है वह कि प्रार्थना मैंने की, मंत्रसिद्धि मुझे मिली, देवता को प्रसन्न मैंने किया, और पड़ोसी को भी फल मिल रहा है—वह भी मुझसे दुगुना।

एक दिन अपनी परेशानी की चर्चा कर रहा था तो उसके एक मित्र ने उसे सलाह दी—“ऐसा मांगो कि तुम्हारी एक हानि हो और उसकी दुगुनी। ऐसी सलाह देने वालों की कमी नहीं है दुनिया में। वह घर आया और प्रार्थना की देवता से कि मेरी एक आँख फूट जाए। फूट गई आँख। फिर कमरे से बाहर आकर देखता है। उतने में पत्नी कहती है—हाय — हाय — यह क्या हो गया, एक आँख कैसे फूट गई? वह रोने लगी, चिल्लाने लगी। पति कहता है—रो मत, पड़ोसी को देख पहले। वह बाहर आकर पड़ोसी को देखता है, उसकी दोनों आँखें फूटी देखकर खुश होता है। ये हैं कृष्ण लेश्या वाले, जिनकी आत्मा काले रंगों से रंग गयी है। दूसरों को नुकसान पहुँचाने के लिए अपना भी नुकसान कर लेते हैं। दूसरों को दुःख देने के लिए स्वयं दुःखी होते हैं। किसी भी कीमत पर दूसरों को त्रास देना है, पीड़ा देनी है। नील और कापोत लेश्या में तीव्रता कुछ कम होती है। ये अशुभतम, अशुभतर और अशुभ लेश्याएं हैं।

तेजा लेश्या में सुख देने का शुभ भाव जग जाता है। पीत लेश्या में शुभतर होता है। शुक्ल लेश्या में शुभतम भाव जगते हैं, अपना सर्वस्व लुटाकर जनहित के भावों से ओतप्रोत है—आत्म-परिणति। अंतिम अवस्था है—विशुद्ध अवस्था जहाँ श्वेत रंग भी नहीं है।

### वीतराग

स्फटिक स्वयं निर्मल है किंतु बाह्य रंग सामने आने पर रंग झलकता है। किंतु वीतराग तीर्थंकर इतने रंगशून्य हैं कि बाहर का रंग भी नहीं झलकता है। भागेंदु ने लाल रंग को लाक्षणिक रूप से लिया है, वैसे सभी रंगों से शून्य हैं।

एक तरफ हम हैं कि कितनी सहजता से रंग भरते जाते हैं। रात-दिन के अनुभव हैं सबके अपने-अपने। जीवन की हर घटना एक कूची है रंगों से भरी।

हर वृत्ति रंग है। श्वेत वस्त्र पर रंग पोतते जा रहे हैं। स्थिति यह हो गई है कि वस्त्र निर्मल है, स्वच्छ है, इतना भी पता नहीं चल रहा है।

छोटी-छोटी बातें हैं, समझने लायक हैं। कोई किसी का अपमान करता है। हम सोचते हैं बहुत अच्छा हुआ, इसीके लायक थे, बहुत अकड़कर चलते थे, अच्छा मजा चखाया। कोई हिंसा करता है, हम कहते हैं—ठीक निशाना साधा।

दो व्यक्तियों की आपसी कोई समस्या है। आपसे समाधान लेने आए। जज बनते हैं आप; एक की पीठ थपथपाई और दूसरे पर दोषारोपण किया। दोहरे रंग चढ़ाते जा रहे हैं। रंग इतने चढ़े हैं कि रंग, रंग नहीं, मैल बन गए हैं। गंदगी है, हटाना होगा सबको, तब निर्मलता प्रकट होगी। सफाई करनी होगी, रंगों को उतारना होगा। भक्तराज भागचंद्र गाते हैं—

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्दरहितं,  
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाऽभ्यन्तरमपि।  
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विभला,  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥

भगवान् की आँखों में क्रोध की लालिमा नहीं है। क्रोध में/उत्तेजना में आँखें लाल होती हैं, भ्रुकुटियां चढ़ जाती हैं। भागचंद्र जिन को अपने नयनों में समा जाने की प्रार्थना करते हैं। भगवान् के नयनों को देखते हैं तो आश्चर्यमुग्ध हैं, भगवान् की आँखों में रंग नहीं हैं। चारों तरफ तो रंगों से भरी दुनिया है, जबकि मेरी ये आँखें धन्य-धन्य हुई हैं, उन्होंने परमात्मा के दर्शन किए हैं जिनकी आँखों में कषायों के रंग नहीं, वे तो रंगशून्य हैं।

“न नेत्रे न गात्रे न वक्त्रे विकारः”

न नयनों में, न शरीर में, न मुख मंडल पर। विकारों की हल्की-सी रेखा तक नहीं है। न अपने अंतरंग जीवन में कोई विकार है, न अन्य जीवन के विकार उन्हें प्रभावित करते हैं, न उनका कोई रंग है न बाहर के रंग उन्हें रंग पाते हैं।

अद्भुत, दिव्य रूप है—प्रभु का। प्रसन्नचंद्र दीक्षित हुए हैं, तो रोहिणेय चोर एवं हत्यारा अर्जुनमाली भी संघ में उपस्थित हैं। मृगावती जैसी महारानियों के साथ दासियाँ भी दीक्षित होकर संघ का अंग बनी हैं। सब पर असीम कृपा बरस रही है। काली-महाकाली आदि महारानियाँ और अजातशत्रु सम्राट् कोणिक के सम्मुख सत्य अबाधित रूप से प्रकट हुआ है।

जहा तुच्छस्स कत्थई तथा पुण्णस्स कत्थई,  
जहा पुण्णस्स कत्थई तथा तुच्छस्स कत्थई।

बिना किसी लागलपेट के जितनी स्पष्टता से साधारण व्यक्ति को जीवन की यथास्थिति का दिग्दर्शन भगवान महावीर कराते हैं और साथ ही उतनी स्पष्टता से श्रेष्ठजनों को भी कराते हैं महावीर ।

### रंग-शून्यता

जितने प्रेम एवं आत्मीयता से भाग्यशाली महाराजों से बात करते हैं, उतने ही प्रेम, उतनी ही आत्मीयता से तुच्छ एवं साधारण व्यक्ति के साथ महावीर बात करते हैं । न किसी के राजा होने का रंग उनके लिए अर्थ रखता है, न किसी के रंक होने का, न किसी के पामर होने का, न किसी के पुण्यात्मा होने का, न किसी की श्रेष्ठ जाति, श्रेष्ठ वर्ग, श्रेष्ठ कुल, श्रेष्ठ भाग्य होने का रंग, न ही किसी के नीच जाति, क्षुद्र वर्ण, नीच कुल, फूटे भाग्य होने का रंग, न किसी के अमीर होने का और न किसी के गरीब होने का रंग, न किसी के विद्वान् होने का और न ही किसी के मूढ़ होने का रंग, न किसी से सम्मानित होने का और न किसी से ठुकरा जाने का रंग । कोई भी रंग महावीर के लिए रंग नहीं है । तमाम रंगों की बदरंगी परतों के नीचे छुपे हुए जिनत्व की दिव्य आभा को महावीर देखते हैं । महावीर का जीवन-संदेश है—सारे रंग छूट जाएं, परम शुद्ध-विशुद्ध स्वरूप प्रकटे ।

भागचंद्र की भक्ति में यही भाव भरा है कि भगवान महावीर मेरी आँखों में समा जाएं । इन बाह्य आँखों से जो रंगारंग संसार मैं देख रहा हूँ, जो बदरंग दृश्य हठात् मेरी आँखों के सामने आते हैं वे मुझ पर किसी प्रकार का रंग चढ़ाए बिना ओझल हो जाएं । मैं भी किसी प्रकार के रंग चढ़ाए बिना रंगशून्य हो जाऊँ । वीतराग भक्ति/परम विशुद्धावस्था मुझमें प्रगटे ।

\*\*\*

## भवतु मे.....

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट - मणि-भा-जाल-जटिलं,  
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनु-भृताम्।  
भव-ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ३ ॥

जिनके चरण-कमल नमस्कार करते हुए इन्द्रों के मुकुटों की मणियों के प्रभापुंज से व्याप्त हैं, और जो स्मरणमात्र से संसारी जीवों की भवज्वाला को जलधारा के समान पूर्ण रूप से शांत कर देते हैं, ऐसे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा मेरे नयन-पथ पर विराजमान रहें अर्थात् मेरे नयनों में समा जाएं।

दो प्राणी हैं। एक प्राणी है धरती पर। वह है मनुष्य। मनुष्य कोई सर्वसाधारण नहीं है। सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसकी श्रेष्ठता के, महानता के गुण-गान गाए हैं—शास्त्रकारों ने। इतने गान हैं मनुष्य की महानता के संबंध में, पढ़ते हैं तो मुग्ध कर जाते हैं कि हाँ, हम भी कुछ हैं!

दूसरा प्राणी है आकाशवासी देव। देवता की महिमा के भी गान गाए हैं। यह करो, वह करो तो देवता प्रसन्न हो जाएँगे। प्रसन्न होंगे तो तुम्हारा सब कर देंगे। बिना उनके तुम कुछ नहीं कर सकते। देवता की पूजा करोगे, देवता प्रसन्न होंगे, तो वर्षा होगी, खेती होगी, तुम्हें खाने को अन्न मिलेगा।

धर्म था—बन्धन की मुक्ति के लिए, आत्मा की पवित्रता के लिए। लेकिन ऐसी उल्टी गंगा बहा दी कि धर्म को भी देवताओं को प्रसन्न करने का हेतु बना दिया। देव कैसे बनेगा? तो कहा गया कि धर्म, साधना, तप, त्याग, सदाचार जो हैं, उनसे स्वर्ग में देव बन जाओगे। त्याग का फल भोग बताया जाने लगा। इतना हो गया कि गणित भूल गए। कहा—छोड़ो यहाँ पर सबकुछ; मरकर स्वर्ग में जाओगे, वहाँ सब मिल जाएगा। यहाँ पत्नी छोड़ोगे, वहाँ अप्सराएँ मिलेंगी, स्वर्णसिंहासन मिलेंगे, भोगों की कमी नहीं रहेगी।

एक प्रश्न है—मनुष्य की श्रेष्ठता धर्म से है, सदाचार से है, अन्दर की पवित्रता से है, तब धर्म की श्रेष्ठता तो कुछ रही नहीं, अगर मनुष्य से देवता श्रेष्ठ

हैं तो भोग-प्रधान संस्कृति ही महान् है। इस संबंध में भगवान् महावीर क्या दृष्टि रखते हैं ?

भगवान् महावीर का दर्शन मानव की महत्ता का दर्शन है। वे देववादी नहीं, मानववादी हैं। उनका कहना है—सदाचारी, संयमी मानव देवों से भी ऊँचा है।

मनुष्य श्रेष्ठ है, किन्तु मनुष्य के रूप में पशुता आ जाए; मनुष्य की देह तो है पर कर्म में, जीवन में पाशात्रिक वृत्तियाँ काम कर रही हैं तो वह मात्र देहधारी मनुष्य श्रेष्ठ नहीं।

मनुष्य शरीर-रूप में एक दीवट है। इस मिट्टी के दीवट में धर्म की ज्योति जले, अन्धेरे में प्रकाश दे तो वह महान् है। देवता भी नतमस्तक हैं उस महानता के सम्मुख। मनुष्य प्रज्वलित दीपक है तो देवता भी चरणों में झुकेंगे। विकारों की, कषायों की दलदल में से निकलकर ऊँचाई पर पहुँचोगे तो स्वर्ग उतर आएगा। ये ऊँचाईयाँ पार्थिव नहीं, आत्मिक हैं। कर्मबन्धन की स्थिति इसे और स्पष्ट करती है।

पाप के अशुभ भावों में पहले कभी नरकायु का बन्ध हो गया और बाद में धर्मज्योति जगी, सम्यग् दृष्टि हो गया तो भी पूर्व-बद्ध आयु-कर्म के अनुसार वह मरकर नरक में जाता है। जैसे सम्राट् श्रेणिक सम्यग् दृष्टि है किन्तु आयु का बन्ध पहले होने से नरक में गया।

दूसरी ओर इक्कीसवें देवलोक में कोई मिथ्यादृष्टि है। स्वर्ग के सुख में है किन्तु मिथ्यादृष्टि है। और नरक की वेदना में है किन्तु सम्यग् दृष्टि है। कौन श्रेष्ठ है दोनों में ? दोनों में जो सम्यग् दृष्टि है, भले वह नरक में हो, श्रेष्ठ है। देव होने से क्या है ?

यह केवल एक आदर्श नहीं था, अपितु यथार्थ सत्य था—महावीर का। एक बार तीर्थंकर महावीर दशार्णदेश पधारे। महावीर के भक्त राजा दशार्णभद्र ने भाव-विभार हो भगवान् का अत्यन्त हर्ष-उल्लास के साथ स्वागत किया। राजा के साथ देशवासी भी अपने वैभव को अर्पण करते हुए स्वागत में भक्ति-भाव में विभोर हो उठे। लग रहा था—स्वर्ग का समग्र ऐश्वर्य बिखर गया है सब ओर। तब देवराज इन्द्र ने स्वर्गीय वैभव का मुक्त प्रदर्शन कर उसे अपमानित करने की भूमिका रची। राजा दशार्णभद्र समवशरण में भगवान् के श्री-चरणों में पहुँचकर भगवत्-वाणी का श्रवण कर रहे थे। भगवान् की धर्मदेशना प्रवाहित थी—मानव महान् है, अपने में सोए हुए दिव्य-भाव को जगा लेता है। अहिंसा, संयम और तप की धर्मज्योति जिसके जीवन में प्रज्वलित होती है, उसके लिए धरती का तो

क्या, स्वर्ग का वैभव भी कुछ अर्थ नहीं रखता। वह तो देवताओं से भी ऊपर की भाव स्थिति में है। पार्थिव या दैविक ऐश्वर्य की क्या कामना करनी है, आध्यात्मिक ऐश्वर्य ही ऐश्वर्य है। आयुष्यमन् ! तुम अपनी अनन्त शक्ति को पहचानो। जागो ! प्रमाद मत करो ! जो तुम कर सकते हो वह तो देवता भी नहीं कर सकते हैं।

भगवान् महावीर का मंगलमय उद्बोधन सुन, राज्य-ऐश्वर्य को त्यागकर राजा दीक्षित हो गए। अब क्या था, इन्द्र भौतिक ऐश्वर्य के साथ स्पर्धा कर सकता था लेकिन आध्यात्मिक ऐश्वर्य के साथ प्रतिस्पर्धा कैसे हो सकती है ? वह हतप्रभ हो गया। भक्ति-भाव से गद्गद् हृदय से राजर्षि के चरणों में नतमस्तक हो गया।

मनुष्य की ही मूढ़ता है कि वह देवताओं के पीछे भाग रहा है, धर्म के नाम पर देवताओं को खुश करने के लिए पशुबलि देने जैसे जघन्य पाप करता है। कुछ तो बड़े ही अज्ञानी हैं। अभी कुछ दिन पहले एक व्यक्ति पकड़ा गया। वह अपने युवा पुत्र के साथ मंदिर में दर्शन करने गया। पुत्र प्रणाम कर रहा था कि पिता ने झट कुल्हाड़ी उठाई और मारने दौड़ा। पुत्र ने तत्काल लपककर पिता का हाथ पकड़ लिया। हल्ला हुआ, भीड़ इकट्ठी हुई, पिता पकड़ा गया। पृछताछ करने पर मालूम हुआ कि पिता को अपनी लम्बी आयु के लिए और समृद्ध होने के लिए पुत्र की बलि देनी थी।

ऐसी अनेकानेक घटनाएँ यदा-कदा अखबारों की सुर्खियों में होती हैं। ऐसा क्यों ? भगवत् स्वरूप को ठीक से समझा नहीं, जो भगवान् हैं वह बलि नहीं चाहता। अभयदान देने वाला भगवान् और उसका भक्त किसी पशु, पुत्र, पुत्री या किसी भी अन्य प्राणी की हत्या नहीं कर सकता है। जो धर्म के नाम पर बलि चढ़ाता है उसने धर्म को समझा नहीं; और तो और, अपने आप को भी नहीं समझा।

भगवान् महावीर की धर्म-देशना है — 'मनुष्य ! तू स्वयं अनन्त शक्ति संपन्न है। अपनी शक्ति को तू भूल गया है, तुम्हें विस्मरण हो गया है। अज्ञान और मोह की बेहोशी में तुझे पता नहीं कि तू कौन है। तू स्वयं ईश्वर है, परमात्मा है। वह सो गया है, उसे जगा। परमात्मा-भाव का जागरण होने पर श्रेष्ठता कहीं बाहर से लानी नहीं पड़ेगी ? श्रेष्ठता स्वयं आकर सामने झुक जाती है।



महान् भक्तराज, भक्ति-स्तोत्र के रचनाकार भागवन्द भगवान् महावीर के इसी दिव्य रूप को स्मृति में ला रहे हैं—

नमन्नाकेन्द्राली - मुकुट - मणि-भा-जाल-जटिलं,  
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।  
भवज्वाला-शान्त्यै प्रभवतिजलं वा स्मृतमपि  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥

देवताओं के मुकुट भगवान् के श्री चरणों में झुक गए हैं। भगवान् का यह दिव्य रूप मेरी आँखों में समा जाए। भगवन् ! इन आँखों से एक तुझे देखा, मैं धन्य-धन्य हो गया। और अधिक धन्यता तो यह है कि तुम मेरी आँखों में समाए हुए रहो। अपलक तुम्हें देखता रहूँ। तब भी नयनों की प्यास बुझने वाली नहीं है—अतः नयनपथगामी भवतु मे।

मैं देख रहा हूँ—मनुष्य भाग रहा है झुकने के लिए। उसकी दशा क्या है? स्वार्थ से प्रेरित है, कामनाओं से उत्पीडित है। ईर्ष्या, घृणा, द्वेष से दग्ध है, देवताओं की प्रार्थना में झुके हुए हैं। झुके हुए हैं भय से और प्रलोभन से।

एक छोटे बालक से उसके शिक्षक ने पूछा कि 'बेटे तुम रात को सोते समय प्रार्थना करते हो?' उसने कहा—'बिलकुल ! रोज करता हूँ नियम से करता हूँ।'

शिक्षक ने पूछा—'सुबह उठकर सुबह की प्रार्थना करते हो?'

बालक ने कहा—'कभी नहीं करता।'

शिक्षक ने कहा—'यह मेरी समझ में कुछ नहीं आया। रात को जब तुम नियमित प्रार्थना करते हो तो सुबह की प्रार्थना क्यों नहीं करते?'

बालक ने कहा—'रात को मुझे डर लगता है, सुबह मुझे डर नहीं लगता।'

प्रार्थना क्या है? मांग है, यह मिल जाए, वह मिल जाए। यह बाल-भाव से आई मांग है। देवताओं के चरणों में झुकते हैं क्यों? वे कुछ कर देंगे इसलिए। मस्तक झुका है पर अन्तर् हृदय का मेल नहीं हुआ उस नमस्कार से। अन्तर् का मेल तो कामना के साथ हुआ है, पार्थिव वस्तु के साथ हुआ है।

लोग आते हैं, प्रणाम करते हैं, झुक रहे हैं। शरीर झुक रहा है पर अहंकार खड़ा है। वह दिखाना चाह रहा है शरीर को झुकाकर कि यह है भक्ति, यह है पूजा, यह है समर्पण, यह है विनम्रता, यह है साधुता, यह है सरलता। प्रणाम में भी उसका नाम नहीं, किन्तु इच्छापूर्ति की रटन है।

अभिवादन में आत्मा के तारों का वादन-चारों तरफ से हो रहा है, तार झनझना रहे हैं, एक दिव्य संगीत का अभिवादन हो रहा है। एक मस्ती आ गई, अहंभाव जगा और झुके। आत्मिक भावों के साथ झुके। अब दौड़ना कहाँ, मंजिल पा लेने पर।

पर संसार दौड़ रहा है, किसके चरणों में? कोई मतलब नहीं, जहाँ कहीं कुछ मिल जाए, दौड़ चालू है। किन्तु प्रभु! तू ठहर गया है, स्व में स्थित हो गया है, पथ मिट गए, मंजिल मिल गई। अपने में शिखरायमान है, ऊँचा और ऊँचा उठा है। इतना ऊँचा है कि जिसके आगे कोई और ऊँचाई नहीं; ऐसी परम श्रेष्ठता है, जिससे बढ़कर कोई और श्रेष्ठता नहीं। उस श्रेष्ठता के दर्शन हेतु देवता भी आ रहे हैं, भक्तिभाव से वन्दन-नमस्कार के लिए।

भगवान् के दिव्य रूप का दर्शन स्वयं में एक जीवन-दर्शन है। मनुष्य की महानता का प्रेरणासूत्र है।

तुम स्वयं महान् बनो! तुम्हें रोते गिड़गिड़ाते भीख माँगने की जरूरत नहीं। जो भीख में मांग रहा है उसकी पूर्ति असंभव है। पूर्ति हो भी जाए तो वह जीवन के दुःख मिटाने में असमर्थ है।

गुलामी से प्राप्त हो गया कुछ  
तो गुलामी मिटने वाली नहीं।  
दीनता से प्राप्त कर भी लो कुछ,  
तो दैन्य मिटने वाला नहीं।  
मांग कर पा लिया कुछ,  
तो मांग मिटने वाली नहीं।  
थकेल कर पा लिया कुछ  
तो उससे ऊँचा उठने वाला नहीं।  
स्वयं में स्वयं को पा लिया,  
तो राजराजेश्वर बन जाओगे।  
पुरुषत्व जगा, पुरुषार्थ किया  
तो परमात्मा बन जाओगे।

तभी अशुभ, अशिव, अमंगल, दुःख, सबकुछ मिटनेवाला है। अंधकार की रात में सूर्य का उदय ही रात का विदा होना है। दीवट में ज्योति का जगमगाना ही अंधेरे का पलायन है। प्रभु! तुम मेरे नयनों की ज्योति हो, सदा मेरे नयनों में समाए रहो।

..... भवतु मे

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दुर्दुर इह,  
क्षणादासीत् स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुख-निधिः  
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा ?  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ४ ॥

जिनकी साधारण-सी स्तुति के प्रभाव से जब नन्दन मैढक जैसे तुच्छ भक्त भी, क्षणभर में, प्रसन्नचित्त होकर अनेकानेक सद्गुणों से समृद्ध, सुख के निधि स्वर्गवासी देवता बन जाते हैं, तब यदि भक्त-शिरोमणि मानव मोक्ष का अजर-अमर आनन्द प्राप्त कर ले, तो इसमें आश्चर्य ही किस बात का ? इस प्रकार परम दयालु भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा मेरे नयन-पथ पर विराजमान रहें अर्थात् मेरे नयनों में समा जाएँ ।

आज के इन क्षणों में अन्तश्चक्षु से तीर्थकर भगवान् महावीर के समवसरण को देख रहे हैं, जहाँ अमृत-गंगा बही । उस अमृत-गंगा के दर्शन के लिए अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार सभी आए । देव-दानवों के बीच परस्पर शत्रुता है, वैर है किन्तु सहोदर बंधुओं के समान समवसरण में उपस्थित हैं । सम्राट् तो मानो अहंकार का शिखर है । बाहर तो राजा राजा है, भिखारी भिखारी है किन्तु समवसरण में तो राजा और रंक दोनों बंधु हैं । पशु-पक्षी जिनमें जाति-वैर है वहाँ साथ-साथ उपस्थित हैं । सिंह-हिरण बैठे हैं । न हिरण को सिंह की हिसावृत्ति से कोई भय है । इस रूप को हृदय की आँखों से पिया-सुधर्मा ने । संकलित किया शास्त्रों को इन आँखों के माध्यम से पढ़कर । उसका साक्षात् रूप अन्तश्चक्षु-पथ में प्रकट हुआ है । एक-एक वचन, एक-एक दृश्य इतना महान् है कि ज्ञाता-द्रष्टा को भाव स्थिति में पहुँचा दे । उत्थान-पतन का इतिहास है । महाकाल के प्रवाह में न जाने कितने सम्राट् आए और चले गए । कितने सिंहासन पर स्थित हुए और कितने सिंहासन डोले । कितनी जाति-प्रजातियाँ पैदा हुईं और मिट गईं । अस्तित्व तक नहीं रहा । कितनी परम्पराएं आईं और बिखर गईं, फिर भी अमृत-वाणी आजभी प्राणवान् है । हम बहुत बिखरे, बहुत टूटे, बहुत बार

जी-जीकर मरे, मर-मरकर जिए। किन्तु वह ज्योति/ज्ञान-ज्योति आज भी प्रज्वलित है।

मन के सघन अन्धकार में, अमावस्या के अंधेरे में उस ज्योति की एक किरण भी उतर आई तो मन का अंधेरा कहीं रह पाता है? उजाले ही उजाले में मन की कड़वाहट कहीं गायब हो जाती है, पता भी नहीं चलता। माधुर्य ही माधुर्य भर जाता है। अमावस्या पूनम में बदल जाती है, चिलचिलाती धूप चाँदनी में बदल जाती है। उस वाणी की ज्योति का स्पर्श पाकर शीतल मन में प्रभु-स्मृति की प्रकाश-किरण उतर आई। प्रभातवेला में/प्रकाश के अवतरण की वेला में भक्ति-भरे स्वरो में हमने भक्ति की है :

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना र्द्धुर इह  
क्षणादासीत् स्वर्गीं गुण-गण-समृद्ध सुख-निधिः  
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा ?  
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥

भक्ति की भाव-धारा बह गई राजगृह के श्रेष्ठी नंदन मणियार के हृदय में। मणियार, चूड़ी पहनाने वाला नहीं; मणियार का अर्थ है मणिकार, रत्नकार, जौहरी। भगवान् महावीर पधारे हैं, वाणी सुनी उनकी और सत्कर्म के भाव जाग उठे मणियार के मन में। जनहित में बावडी का निर्माण किया, दानशाला खोली, सुंदर उपवन बनाया। यात्रा करते हुए लोग आते, व्यापारी आते, स्नान आदि की व्यवस्था होती, अच्छा भोजन एवं ठहरने को अच्छा स्थान मिल जाता, थकान उतर जाती। धन्य है नंदन मणियार, जिसने इतना बड़ा सत्कर्म किया। दूर-सुदूर देशों में खूब प्रशंसा होने लगी।

प्रशंसा तो प्रशंसा है। उसका भी अपना प्रभाव होता है। सत्कर्म करके प्रभु-चरणों में अर्पण करो तो प्रशंसा और सत्कर्म की प्रेरणा मिलती है, प्रोत्साहन मिलता है। यह प्रशंसा नहीं, अपितु गुणानुवाद है। सत्कर्म का अनुमोदन है, व्यक्ति-विशेष का नहीं। इतनी स्पष्ट समझ होती है, भक्त की। किन्तु सत्कर्म का अर्पण न हुआ तो प्रशंसा अहं को पुष्ट करती है।

नंदन मणियार के साथ यही हुआ। प्रशंसा में 'मैं' बढ़ता गया। प्रभु हटता गया, कर्म 'मैं' का हो गया। पहले निष्काम भाव से हुआ, बाद में कामना जगती गई। भगवान् की स्मृति की जगह बावडी की स्मृति ने ले ली। दान भगवान् को क्या दिया, पत्थरों को दिया। बावडी की सफाई, उपवन का विस्तार-सब होता रहता और एक-एक पत्थर को मन पकड़ता जाता। आसक्ति इतनी बढ़ गई कि मरकर उसी बावडी में मैंढक बना।

जनता आती, स्नान-भोजन करती और धन्यवाद देती। जब लोगों के मुख से 'धन्य' की बात नंदन मणियार ने सुनी तो जातिस्मरण ज्ञान हुआ। इतना बड़ा सत्कर्म किया किन्तु निष्काम भाव न रहा, भक्ति न रही। आसक्ति के कारण आज यहाँ हूँ, अन्यथा स्वर्ग में स्वर्ण सिंहासन पर होता। अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगा। विशुद्ध मन पुनः भक्ति की धारा में बहने लगा।

भगवान् का पदार्पण हुआ, राजगृह में हलचल मच गई। भगवान् के पदार्पण की चर्चा सुनी तो दर्शन का भाव जगा। भगवान् के दर्शन करने उछलता, कूदता, फुदकता निकल पड़ा। सम्राट् श्रेणिक भी उसी समय भगवान् के दर्शन के लिए राजपरिवार परिषद के साथ जा रहे थे। अचानक घोड़े के पैर के नीचे आ गया मैँढक और कुचला गया, मर गया। भगवान् के दर्शन तो नहीं कर सका। नंदन मणियार के भव में भगवान् को पाकर खोया किन्तु मैँढक के भव में पुनः पा लिया। भक्ति की भाव-धारा में मृत्यु हुई और स्वर्ग में जन्म लिया। वहाँ पहुँचते ही पूर्व-भव का स्मरण हुआ। पुनः स्वर्ग से धरती पर भगवान् के दर्शन करने आया।

ज्ञाताधर्मकथांग-सूत्र में इस कथा का विस्तृत विवरण है। सौभाग्य है कि दिगम्बर-परम्परा में भी यह कथा यूँ की यूँ है। भागचन्द्रजी ने भी इसे भक्ति के रस में सराबोर होकर गाया।

कहाँ कौन जाएगा भगवान् को? भाव है तो भगवान् है। भाव गए तो भगवान् भी चले गए। भाव में ही भगवान् से मिलन है।

भागेन्दुजी ने भी स्मरण किया—मैँढक/भक्त दर्दुर मरकर देवता बना, सबसे पहले दर्शन करने पहुँचा : “यदर्चाभावेन प्रमुदिता-मना दर्दुर इह”

प्रमुदित मन से अर्चना करते हुए दर्दुर देव बन गया। मैँढक ने कौन-सा काम किया? जिनके जीवन के कण-कण में रम गई भक्ति की धारा।

“लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा”

ऊँचाई पर पहुँचे भक्त रम गए हैं, लीन हो गए हैं भगवान् में। वे अगर भगवत् स्वरूप को पा जाते हैं तो इसमें क्या आश्चर्य है? वस्तुतः भक्ति में मुक्ति है।

..... भवतु मे

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञान-निवहो,  
विचित्रात्माऽप्येको नृपतिवर-सिद्धार्थ-तनयः ।  
अजन्माऽपि श्रीमान् विगत-भवरागोऽद्भुतगतिः  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ५ ॥

जो तप्त स्वर्ण के समान उज्ज्वल कान्तिमान् होते हुए भी अपगत तनु—शरीर के मोह से रहित थे, ज्ञान के पुंज थे, विचित्र आत्मा, विलक्षण आत्मा होते हुए भी एक अद्वितीय थे। राजा सिद्धार्थ के पुत्र होते हुए भी अजन्मा-जन्म-रहित थे। श्रीमान्—शोभावान् होते हुए भी संसार के राग से रहित थे, अद्भुत ज्ञानी थे, ऐसे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा मेरे नयन-पथ पर विराजमान रहें, अर्थात् मेरे नयनों में समा जाएं।

प्रातःकाल की मंगलमय प्रार्थना की वेला है। प्रभु-स्मरण का, भगवद्-पूजन का, अर्चन का यह मंगलमय समय है। ऐसे पवित्र समय में मन का कण-कण परमात्मा की दिव्य स्मृति से जगमगा जाता है। पवित्रता की ऊँचाइयों को छूता जाता है। ऐसी भाव-स्थिति अन्य किसी समय पर नहीं होती जो प्रार्थना के समय हो जाती है।

समुद्र से जल भाप बनकर ऊपर उठता है, ऊपर और ऊपर चला जाता है, बादल बन जाता है। हवा पर सवार हो नील मगन में फैल जाते हैं बादल। फिर बरसने को होते हैं—प्रार्थना में भाव ऐसा ही ऊँचा उठता है, विस्तार पाता है, बरसने को होता है और बरसता भी है। इसीलिए प्रार्थना का अर्थ थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

आम तौर पर प्रार्थना का अर्थ किया जाता है—मांगना, याचना करना। किन्तु प्रार्थना का लेन-देन से कोई संबंध नहीं। न वहाँ कोई स्वामी है, न कोई सेवक, न दाता है न याचक, न देने का अहं, न मांगने की दीनता। प्रार्थना का अर्थ है—“प्रकर्षेण अर्थं प्राप्नोतीति प्रार्थना”—विशेष रूप से अर्थवान् होना प्रार्थना है। जीवन का मूल्य, जीवन का सार प्राप्त होना प्रार्थना है।

प्रार्थना का अर्थ है—अपनी अर्थवत्ता को पाना। यह जीवन की वह अर्थवत्ता है जो न जन्म से बढ़ती है, न मृत्यु से घटती है। न किसी जाति, कुल, घराने से बढ़ती है, न घटती है। वह अर्थवत्ता आयु, यौवन आदि शरीर की अवस्थाओं में न घटती है, न बढ़ती है। वह अर्थवत्ता ऐश्वर्य के होने में न बढ़ती है, न अभाव में घटती है। जीवन का वह मूल्य सही मूल्य है जो किसी भी मूल्य के आधार से न बना है, न किसी आधार के अभाव में मिटेगा।

### जीवन की अर्थपूर्णता

जीवन के अर्थपूर्ण होने का अर्थ है—बाह्य जीवन और अन्तर्जीवन दोनों ही परम मूल्यवान, परम अर्थवान बनें। जीवन में कोई अर्थ अगर नहीं रहा, रस सूख गया, तो क्या स्थिति होगी जीवन की? कभी सुख की, कभी दुःख की हवा चले तो जीवन कागज के टुकड़े की तरह, सूखे पत्ते की तरह इधर-उधर उड़ता जाएगा, जीवन कूड़ा-कचरा होगा। जब तक मिठाई रखी हुई है तब तक बक्से को संभाला जाएगा, मिठाई खत्म होते ही बक्सा तो फेंका ही जाएगा। अर्थ खोते ही या तो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होगा, या मृत्यु की कामना करेगा। मृत्यु की प्रतीक्षा में जिया गया जीवन भी क्या जीवन है?

पता चले कि परिवार में कोई नहीं चाहता है, किसी के मन में प्रेम नहीं है; या किसी व्यक्ति ने किसी को बहुत प्रेम किया है और वह उससे नफरत करने लगे तो क्या होगी स्थिति? आत्महत्या के विचार आएं, व्यर्थ मालूम होगा जीवन। जीवन भी क्या है? किसी के सहारे टिका है। किसी के लिए जीना है। सहारा मजबूत है, जीने की प्यास है। सहारा हिलते ही मृत्यु की कामना। न मृत्यु स्वाभाविक है, न जीवन निरालम्ब! न जीवन सहज है और न मृत्यु ही। अपनी मस्ती, अपनी खुशी से जिया गया जीवन, जीवन है। जीने के लिए भी दूसरे की ओर ताकते रहो, मरने के लिए भी दूसरे की ओर देखो; अर्थशून्य जीवन की ये मांग-भरो निगाहें प्रार्थना नहीं हैं।

जिनका जीवन ज्योतिर्मय है और मरण ज्योतिर्मय है, ऐसे महापुरुषों को अजन्मा कहा गया है। आचार्य भागेन्दु भी महावीर को अजन्मा कह रहे हैं। अजन्मा का अर्थ है—न जीवन की प्यास, न जिजीविषा, न मृत्यु की कामना। जो मृत्यु से भयभीत है, वह जीने के लिए व्याकुल है। जिसे जीवन से भय है, त्रास है उसकी मरने की इच्छा है। जिसको दोनों प्रकार के भय नहीं वह अजन्मा है।

तीर्थकर महावीर की साधना-काल का दूसरा वर्ष है। भगवान् महावीर दक्षिणांचल से उत्तरांचल विहार करके जा रहे थे। एक मार्ग कनखल आश्रम के भीतर होकर जाता था, दूसरा बाहर से। भगवान् ने भीतर वाले मार्ग पर प्रस्थान किया। कुछ आगे बढ़े ही थे कि गोपालों ने उन्हें रोकते हुए बताया—देवार्य ! इस मार्ग से मत जाइए। इस मार्ग में भयंकर दृष्टि-विष सर्प रहता है। उसकी दृष्टि में विष है। उसकी फुंकार से वनस्पति जगत् नष्ट हो गया है। आस-पास मृत्यु नाच रही है। कोई नहीं जाता है इस मार्ग से। आप मत जाइए।

लोगों के रोकने पर भी रुके नहीं महावीर। उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था। वह अभय का देवता पहुँचा विषधर के पास। इसका अर्थ यह भी नहीं कि मृत्यु के मुँह में जाकर शरीर को नष्ट करना है। शरीर को दंड देना साधना नहीं है। साधना के नाम पर शरीर के साथ उत्पीडन का व्यवहार नहीं करना है। शरीर और शरीर से संबंधित जीवन-मृत्यु सबको संवारना, साधना है। जीवन और मृत्यु के भय से मुक्त एवं निर्भय होना साधना है। शरीर का साधना और आत्मभाव में लीन होना साधना है। शरीर की अपनी भूमिका है, वह भी साधना में सहयोगी है। शरीर भी मित्र है, शरीर के प्रति भी मैत्री का भाव है। उसकी अस्वस्थता, उसके सौन्दर्य के प्रति नफरत कैसे हो सकती है? महावीर पूर्ण स्वस्थ हैं, सुन्दर हैं, आत्मा के अजन्मा होने की विलक्षण आभा है महावीर की। तभी तो प्रायः भक्ति-स्तोत्र के रचनाकारों ने तीर्थकर वीतरागी के शरीर के सौन्दर्य का भावविभोर हो वर्णन किया है। भक्तामर-स्तोत्र के रचनाकार आचार्य मानतुंग कह रहे हैं—

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयम्  
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।

प्रभो ! आपका अलौकिक सौन्दर्य निर्निमेष—एकटक देखने योग्य है। एक बार आपके दर्शन करने के बाद आंखें कहीं अन्यत्र संतुष्ट ही नहीं हो सकतीं।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्,

निर्मापितस्त्रिभुवनैक ललामभूत ।

तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्याम्,

यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

त्रिभुवन के ललामभूत जिनेश्वरदेव ! आप उज्ज्वल परमाणुओं से निर्मित हुए हैं। निश्चित ही वे परमाणु पृथ्वी पर उतने ही थे। तभी आप जैसा दूसरा रूप है नहीं इस पृथ्वी पर।



भागचन्द्र भी दोनों सौन्दर्यों का अर्थात् शरीर के सौन्दर्य और आत्मा के सौन्दर्य का साथ-साथ वर्णन करते हैं—

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो,  
 विचित्रात्माऽप्येको नृपतिवर-सिद्धार्थ-तनयः ।  
 अजन्माऽपि श्रीमान् विगतभवरगोऽद्भुतगतिः,  
 महावीर स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे ॥

सोने जैसा शरीर है आपका, और आप शरीरातीत अवस्था में हैं। देह में देहातीत हैं। देह भी सुंदर है और देहातीत का तो कहना ही क्या? श्री (ऐश्वर्य) सम्पन्न हैं, फिर भी संसार के रागों से परे, रागातीत हैं। महाराजा सिद्धार्थ के पुत्र हैं और अजन्मा हैं। जन्म-मृत्यु से परे हो गए हैं। विलक्षण 'एकमेवाद्वितीय' हैं। ज्ञानी हैं। ऐसे महावीर स्वामी मेरे नयनपथगामी बने रहें, जिससे मैं आपको कहीं अन्यत्र निहारने न जाऊँ, आपको अपनी आँखों में ही विराजमान पाऊँ।

\*\*\*

..... भवतु मे

यदीया वाग्-गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,  
बृहज्ज्ञानान्भोर्भिर्जगति जनतां या स्नपयति ।  
इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता,  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ६ ॥

जिनकी वाणी की गंगा विविध प्रकार के नयों की अर्थात् वचन-पद्धतियों की तरंगों से विमल है, अपने अपार ज्ञान-जल से अखिल विश्व की संतप्त जनता को स्नान कराकर शान्ति देती है, भव-ताप हरती है, आज भी बड़े-बड़े विद्वानरूपी हंसों द्वारा सेवित है, ऐसे भगवान् महावीर स्वामी मेरे नयनपथ पर सदा विराजमान रहें, अर्थात् मेरे नयनों में समा जाएं ।

ऋजुबाला नदी का प्रवाह शान्त बह रहा है । संध्या उतर आई है । शाल-वन की हरीतिमा ऐसी प्रतीति करा रही है, जैसे कि स्वर्णिम आभूषणों से अलंकृत प्रकृति हरा दुशाला ओढ़े आनन्द की लाली छिटकती उत्सव में आई है ।

### असाधारण उत्सव

वास्तव में वहाँ उत्सव ही था । उत्सव भी कोई साधारण नहीं, असाधारण उत्सव होने जा रहा था । कालचक्र की गति में यूँ ही कहीं कुछ क्षणों में खो जानेवाला नहीं, अमिट अभिलेखों में अंकित होनेवाला । सहस्राब्दियों बाद भी जन-मन को आल्हादित करनेवाले उत्सव की वह संध्या थी—वैशाख शुक्ला दशमी की ।

अनादिकाल के अज्ञान और मोह को क्षय होते-होते अब सूक्ष्म अवस्था में जो बचे थे, उनका भी सम्पूर्ण क्षय करके एक महासूर्य उदयावस्था में आ रहा है । एक वीर, वीर ही नहीं महावीर, ध्यान की परम शुक्लावस्था में है । \_\_\_\_\_ ज्ञान तरियाए वद्धमाणस्स अणते अणुत्तरे निव्वाधाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने । तए णं समणे भगवं महावीरे अरहा जाए, जिणे केवली सव्वत्रू सव्वदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स परियायं जाणइ पासइ\_\_\_\_\_

अनादिकाल से आत्म-स्वरूप के विनाश में लगे हुए उन चार घाति कर्मों का क्षय करके कैवल्यसूर्य उदित हुआ। केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट हुआ। महावीर अर्हत् अवस्था को उपलब्ध हुए।

### अनवरत प्रकाशित धर्मदेशना

सूर्योदय के साथ ही प्रकाश की किरणें फैल जाती हैं धरती पर। ऐसे ही अरहन्त होते ही भगवान् महावीर की धर्मदेशना प्रकाशित हुई। अनवरत होती ही रही—यावन्निर्माण सम्प्राप्तिः।

ऋजुबाला के समवसरण के तुरंत बाद भगवान् महावीर ने वहाँ से विहार किया, पावापुरी पधारे। वैशाख शुक्ला एकादशी के सूर्योदय के समय पावापुरी में समवसरण लगा है। इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डित, मौर्य, अंकपित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास अपने युग के ख्यातिप्राप्त पंडित थे। उनके पांडित्य पर गौरव है समाज को। सैकड़ों शिष्य हैं हरेक के अपने-अपने। इन्द्रभूति के नेतृत्व में सब एकत्रित हुए और विराट् यज्ञ का आयोजन होने जा रहा था। हजारों पशुओं की बलि दी जाने वाली थी उस यज्ञ में। इसी बीच भगवान् महावीर के समवसरण की सूचना मिली। यह भी सूचना मिली कि समवसरण क्या लगा है, धरती और आकाश एक हो उमड़ पड़े हैं। गौतम आदि सभी ग्यारह पंडित अपने ४४०० शिष्यों के साथ एक-एक गण के रूप में समवसरण में आते गए। भगवान् महावीर की वाणी प्रकाशित हुई। वाणी क्या थी, परमविशुद्ध चैतन्य, जो श्रेष्ठतम, उच्चतम शिखर है परम उपलब्धियों का, वहाँ से प्रवाहित हुई—अमृत की पावन गंगा।

### अद्भुत एवं दिव्य

अमरता का दिव्य संदेश, विश्व-मैत्री का सर्वजनसुखाय संदेश है, आप्रह-मुक्त चिंतन का, स्याद्वाद का संदेश है उसके कल-कल निनाद में। भगवान् महावीर की दिव्य वाणी सुनी। सुनी क्या, उस पवित्र गंगा में स्नान किया, गहरे उतरे। निर्मलता ऐसी आई कि अन्तर्मन में अहिंसा और करुणा जगी। पशु-बलि के उस यज्ञ से हटकर भगवान् के श्रीचरणों में दीक्षित हुए। भगवान् से जो पाया वह इतना अद्भुत और दिव्य था कि गौतम अकेले ही पाकर नहीं रहे। धारा बही उनसे आगे, और आगे की ओर। हजारों के जीवन को अभयदान, जीवनदान मिला। वे सबके सब अभयदान देनेवाले दाता बने।

भक्तराज भागेन्दु के अन्तश्चक्षु के सामने ऐसे ही समग्र दिव्य समवसरण चित्रपट की तरह आ रहे हैं। दिव्यता को भक्तिपूर्ण भावों से उतने ही ललित शब्दों में काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। 'यदीया..... भवतु मे'।

## महावीर का दिव्य घोष

महावीर के युग में मनुष्य का जीवन भी ऐसा हो गया था कि संसार की असारता में जीवन का सार-तत्त्व ही भूल गया। गंदगी इतनी अधिक थी कि कहीं पवित्रता का अता-पता न था। चारों तरफ मृत्यु ही नाच रही थी। लेकिन भगवान् की वाक्-गंगा में मलिनता धुल गई और परमशुद्धता पाई। भगवान् से अमरता पाली। अन्धविश्वास, जाति, वर्ण आदि के भेदभाव से रूढ़ परम्परा के बन्धनों में मानवता बुरी तरह जकड़ गई थी।

महावीर का 'दिव्य घोष गूंजा—“अप्पा सो परमप्पा।” हर आत्मा में परमात्म भाव के दर्शन में बेड़ियों को तोड़ा। सम्पूर्ण स्वतंत्रता से साधना की ऊँची उड़ानें भरने का आनन्द पाया।

यह वाणी ऐसी बरसी, ऐसी बरसी कि अनेकानेक जन्मों से चलती आ रही ईर्ष्या, घृणा, नफरत, द्वेष और क्रोध के दावानल को बुझा दिया। इस वाणी ने आसक्ति एवं मूर्च्छा में मूर्च्छित पड़े देवता को जगाया। भाग्य के मारे हताश, निराश हो गिर पड़े लोगों को उठाया। पुरुषार्थ में गति ला दी। नया महान् जीवन उपलब्ध कराया।

## साक्षात् सरस्वती

जो चील वृत्ति से झपट-झपट कर दूसरों के अस्तित्व को/जीवन को निगल जाते थे, महावीर की दिव्य वाणी से उनकी वृत्ति में इतना परिवर्तन आया कि स्वच्छ मानव-सरोवर के मोती चुगने वाले हंस बन गए।

वेदों में जिस प्रिय वाणी का संगान किया गया, वह वाणी है महावीर की। वह साक्षात् सरस्वती है। सबका सम्पूर्ण रूप से मंगल-कल्याण करनेवाली वह ऋषि है। वह मधु है। जिस किसी ने उस मधुर, रम्य एवं प्रिय वाणी का पान किया, वह भी मधु के समान बन गया।

आज भी वह वाक्-गंगा दुनिया के प्रदूषण एवं गंदगी से अच्छी है। उसमें जो स्नान करते हैं, उनके त्रिविध ताप को हरनेवाली है। बड़े-बड़े वाग्मी प्रणत मुद्रा में पान करने को लालायित रहते हैं। खोजी, जीवन के अमूल्य खजाने को पाने के लिए प्रयत्नशील हैं। जिन्होंने पाया, वे भी गद्गद हो भाव-विह्वल हो अहोभाव में भगवान् महावीर की वंदना किए जा रहे हैं। चरण-वन्दनपूर्वक प्रार्थना है—महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।

..... भवतु मे

अनिर्वारौद्रेकस् त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः,  
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।  
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशमपदराज्याय स जिन्नेः,  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ७ ॥

संसार में कामरूपी योद्धा कितना अधिक विकट है? वह त्रिभुवन को जीतने वाला है, उसके वेग को महान् से महान् शूरवीर भी नहीं रोक सकते। परन्तु जिन्होंने अपने आध्यात्मिक बल के द्वारा, उस दुर्दान्त कामदेव को भी नित्यानन्द स्वरूप प्रशम पद के राज्य की प्राप्ति के लिए, भरपूर यौवन अवस्था में पराजित किया, ऐसे भगवान् महावीर मेरे नयन-पथ पर सदा विराजमान रहें अर्थात् मेरे नयनों में समा जाएं।

भगवान् महावीर ने तीस वर्ष की अवस्था में राजपरिवार छोड़ा, दीक्षित हुए। साधना के दुर्गम पथ पर चले। साधना का मार्ग दुर्गम है, क्योंकि संसार मार्ग में उपलब्धि बाहर है, संघर्ष बाहर है, द्वन्द्व बाहर है, लड़ना बाहर है, जीतना बाहर है। एक ओर, एकमुखी है सबकुछ! साधना के पथ पर दोनों किनारों पर, अंदर-बाहर उभयतः द्वन्द्व, संघर्ष, हार, जीत, खोना, पाना, बंधन, मुक्ति सबकुछ उभयमुखी है।

बहुतों ने रोका, राजकुमार यह तुम्हारा मार्ग नहीं है। साधारण नहीं असाधारण थे बंधन, महावीर को बांधने के लिए मजबूत बंधन थे। राजपरिवार, पिता, भाई-बहन का स्नेह, शासन-संपदा, किन्तु किसी के रोकने से रुके नहीं महावीर।

बाह्य बंधन उसी को बाँधते हैं, जो भीतर से स्वयं उससे बंधा है। भीतर का बंधन है तो बाहर के बंधन मजबूत होते हैं। भीतर का बंधन न हो तो मजबूत से मजबूत बंधन शिथिल होते जाते हैं।

**बद्धो हि नलिनीनालैः कियत् तिष्ठति कुंजरः ?**

हाथी कमलनाल से बंधकर कब तक रह सकता है ? वह तो बंधनों को पार करता हुआ अलग होगा ही । महावीर अलिप्त हैं, चल पड़े हैं साधना पथ पर ।

पौष माह । प्रकृति में सर्दी का रूप अपनी सीमा पर है । मनुष्य, पशु-पक्षियों को भी रहना-सहना कठिन हो गया है । और महावीर खुले आकाश के नीचे, जंगलों में, एकाकी, एकवस्त्र में ध्यानस्थ हैं । एक दिन दरिद्र ब्राह्मण पहुँच गया । याचना करने लगा—“राजकुमार ! तुमने सबकुछ सबको दिया । उस समय मैं अभागा कुछ कमाने दूर देश चला गया, खाली हाथ लौटा । यहाँ आपसे कुछ पा सकता था लेकिन वंचित रह गया । खैर, अब भी कुछ दे दो ।” महावीर ने ध्यान खोला, अपनी या शरीर की माँग नहीं थी । ब्राह्मण की माँग थी । क्या देते महावीर ! तेरह माह हो गए दीक्षा लिए हुए । जंगल, वन, पहाड़, नदी-तट पर विचरण और ध्यान, यही क्रम रहा । क्या था, क्या लिया किससे, जो देते ! ब्राह्मण की तरफ देखकर महावीर सोचने लगे । देखा, ब्राह्मण की कातर दृष्टि वस्त्र पर टिकी हुई है । एकमात्र वस्त्र जो दीक्षा के समय से शरीर पर है, वही वस्त्र महावीर ने उतार कर दे दिया । सर्वस्व दान कर दिया ।

इसी तरह महावीर बारह वर्ष साधना-काल में भीतर के एक एक वस्त्र उतारते रहे, उतारते रहे । बाहर के सारे वस्त्र उतारना, उतारकर फिर धारण न करना कठिन है । न उतारने के लिए एक चिन्तन, एक भाव खड़ा हो जाता है, खड़ा क्या होता है, डटा रहता है । सारे अकाट्य तर्क हैं, सारी व्यवस्था है, विकट व्यूह-रचना है । सुसज्जित सेना है वहाँ पर प्रतिरोध करने के लिए । बार-बार रहकर आक्रमण हो रहा है । कभी क्रोध, कभी मान, कभी माया, कभी लोभ, कभी भय, कभी प्रलोभन, कभी वासना, कभी काम, कितने-कितने सेनापति और असंख्य सेना है ।

**आन्तर युद्धभूमि**

एक अकेला महावीर—न सेना है, न सेनापति है; न शस्त्र । केवल है, कभी-कभी चिन्तन की स्पष्टता लिए हुए ऊँचा उठा आन्तरिक भाव । कहता है महावीर—बाहर युद्ध देखे हैं किन्तु बाहर के युद्ध कुछ भी नहीं है इसके सम्मुख । न युद्ध है, न कोई शत्रु । भीतर का द्वन्द्व घमासान युद्ध है—अप्याण मेव जुञ्ज्ज्जा । वीर, धीर महावीर आन्तर युद्धभूमि में तटस्थ खड़े हैं । तलवार की धार शरीर को काटती है, आत्मा को नहीं । विभावात्मा की कामादि सुभटों की मार भी आत्म-स्वरूप को नहीं काट पाएगी । विशुद्ध आत्मा तो अखंड है, अविनाशी है ।

समुद्र की तरंगें उठती हैं, समुद्र में विलीन हो जाती हैं । समुद्र को उनसे क्या लड़ना ! उसकी लड़ाई इतनी है कि वह क्षुब्ध न हो; उसका क्षुब्ध होना, लहरों

की उदामता का पर्याय है। उसे तो शान्त रहना है। लहरें स्वतः शान्त हो जाएंगी, विलीन हो जाएंगी। लहरों के उठते-उछलते, विलीन होते हुए देखना है। चेतना के सागर में जिसे सेना-सेनापति कह रहा हूँ—उठे हैं, आंधी-तूफान की तरह उठे आ रहे हैं। आक्रामक हैं, भयंकर शक्ति है उनकी। मैं तो क्या, कोई अन्य भी टकराएगा तो समाप्त हो जाएगा। पर मुझे टकराना नहीं। उनको आते हुए, धैर्य के साथ, मौन भाव से, अभय भाव से, निष्काम भाव में देखना है। विलीन होते हुए भी उसी भाव में देखना है।

### शब्दातीत भावस्थिति

अनन्त आनन्द का प्रशान्त सागर है। वर्षों बीत गए। यही चलता रहा। महावीर ने हार न मानी। शब्द नहीं हैं उस भाव-स्थिति के लिए। यह तो हल्की-सी झाँकी है। और ऐसा ही कुछ हुआ। काम-क्रोधादि सुभट त्रिभुवनजयी महान् योद्धाओं ने हार कर अपने अस्तित्व को खो दिया, विलीन कर दिया। विजयी वीर महावीर ने कैवल्य पा लिया। और जगत् के प्रति जीवन में भरते हुए लोगों के प्रति करुणा से भर गए। विजय का संदेश, आत्मविजय का संदेश प्रदान करते रहे। प्राणों में शक्ति भरते रहे। कोई शस्त्र नहीं, कोई आक्रमण नहीं, आक्रमण से बचने के लिए प्रत्याक्रमण भी नहीं। ऐसा मार्ग, ऐसा उपाय देते रहे।

भागेन्दु ने महाप्रभु के दर्शन में विजय का दर्शन पाया।

प्रभु से प्रार्थना की :—

अनिर्वारौत्रेकस् त्रिभुवनजयी काम-सुभटः  
 कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।  
 स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशमपदराज्याय स जिन्व,  
 महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ७ ॥

कामादि योद्धा सबसे युद्ध करते रहते हैं और जीत इनकी ही होती है। ये तो त्रिभुवनजयी हैं। किन्तु प्रभु, तुमने तो युवावस्था में, जो निश्चित रूप से हार जाने की अवस्था है उसमें, कामदेव को पराजित किया। नित्यानन्द स्वरूप को पा लिया। ऐसे देवाधिदेव, जिनेश्वरदेव प्रभु महावीर मेरी आँखों में समा जाएं।

..... भवतु मे

महामोहातंक-प्रशमनपराऽऽकस्मिक-भिषग्,  
निरपेक्षो बन्धुर्विदितमहिमा मंगलकरः ।  
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तम-गुणो,  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ८ ॥

जो जनता के मोहरूपी भयंकर रोग को नष्ट करने के लिए आकस्मिक वैद्य बनकर आए थे, जो विश्व के निरपेक्ष बन्धु थे, जिनका यश त्रिभुवन में सर्वविदित था, जो जगत् का मंगल करने वाले थे, एक से एक उत्तमोत्तम गुणों के धारक थे, ऐसे भगवान् महावीर स्वामी मेरे नयनपथ पर विराजमान रहें अर्थात् मेरे नयनों में समा जाएं ।

सड़क के किनारे एक अंधा व्यक्ति खड़ा है । जो भी व्यक्ति वहाँ से गुजरता है, उसके पैरों की आहट सुनकर उसे बुलाता है और प्रकाश के संबंध में पूछता है । पूछता है हर किसी से कि क्या है प्रकाश ?

कोई कहता—सुबह का समय है । सूरज निकला है, सब ओर प्रकाश ही प्रकाश है । अन्धा व्यक्ति जानना चाहता है कि संध्या समय सूर्यास्त होने पर प्रकाश नहीं रहता, तब क्या करते हैं ? तब क्या होता है ?

**अन्धस्य दीपेन किम् ?**

लोग कहते—सूर्यास्त होने पर रात में दीपक जलाते हैं । दीपक का भी प्रकाश होता है । अंधे ने फिर पूछा कि दीपक कैसे जलाते हैं, तो एक व्यक्ति उसे अपने साथ ले गया और उसी के हाथ से दीपक जलवाया कि उसके प्रश्न का समाधान हो । लेकिन प्रश्न का समाधान नहीं हुआ । उसका प्रश्न बना रहा—प्रकाश क्या है ?

समस्या कुछ है, समाधान कुछ और ही दिया जा रहा है । कितने ही तर्क वितर्क करो, प्रमाण दो, लेकिन अंधे को कैसे बता सकोगे कि प्रकाश क्या है ? अंधे के लिए ये सब व्यर्थ हैं ।



संयोग से उसे एक दिन एक वैद्य मिल जाता है। उससे भी वही प्रश्न पूछता है—प्रकाश क्या है? वह समझ जाता है कि यह अंधा है। उसकी आँखों का उपचार करता है और अंधे को दिखाई पड़ने लगता है। अब उसने स्वयं प्रकाश देखा। अंधे को प्रकाश के लिए उपदेश की नहीं, वैद्य की जरूरत है।

। हमारी आँखों पर भी अज्ञान एवं मोह के जाले आ गए हैं। कौन इन अंधी आँखों को रोशनी देगा? अंधे जीवनभर ठोकरें खाते फिरते हैं। हाथ पकड़कर घूमने वाले नहीं, हाथ में लकड़ी थमा देने वाले नहीं और प्रकाश की बातें करने वाले भी नहीं। हमारे लिए तो वह महापुरुष है, ज्ञानी है, परमात्मा है, जो वैद्य है। इलाज करके अंधत्व मिटाता है, आँखों की ज्योति देता है।

भागचन्द्र कहते हैं—

महामोहार्तक-प्रशमनपराऽऽकस्मिक भिषग्,

निरापेक्षो बन्धुर-विदितमहिमा मंगल-करः ।

शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तम-गुणो,

महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥

भगवान् महावीर मोह के रोग को दूर करने वाले भिषग् अर्थात् वैद्य हैं! मोह के अंधत्व में सत्यासत्य, हिताहित का विवेक न होना स्वभाविक है। ऐसा जीवन तो भयग्रस्त ही होगा। कहाँ होगा मंगलमय, आनन्दरूपी कुछ? दुःखार्त मनुष्य का कौन शरण्य होगा?

महावीर के युग में छुआछूत, ऊँच-नीच, सवर्ण-अवर्ण आदि कुप्रथाएँ थीं। ऐश्वर्य, श्रेष्ठ जीवन और सुख-शांति पाने के लिए बड़े-बड़े यज्ञ होते थे, जिनमें हजारों निरीह, मूक पशुओं की, मनुष्यों तक की बलियाँ दी जाती थीं। मनुष्य इतना अंधा हो गया था कि जीवित प्राणी में अपने सदृश अस्तित्व को, जीवन को नहीं देख पा रहा था। जीने की चाह जैसी हमारी है, वैसे ही औरों की भी है, इसका परिबोध न था।

इस अंधत्व में केवल एक मांग है—मुझे सुख चाहिए, जैसे अंधा प्रकाश मांगता है। महावीर ने दृष्टि दी, अंधी आँखों को रोशनी दी। लोग अहोभाव से कह उठे—चक्खुदयाणं। चक्खुदयाणं अर्थात् आँख देने वाला। गुरु अपने अंधे शिष्य के लिए दीपक नहीं जलाता है, सूरज से भी प्रार्थना नहीं करता है। वह शिष्य की आँखें खोलता है।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया,

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।

महावीर ऐसे भिषक् हैं, जो दृष्टि देते हैं। लेकिन उन्हें गुरु बनने की चाह नहीं थी। चेलों से पैर पुजवाने की चाह नहीं थी और न ही प्रशंसा लूटनी थी। कोई कामना कोई आकांक्षा और कोई स्वार्थ नहीं था इसके पीछे।

भागचन्द्र स्वयं समाधान दे रहे हैं—“निरापेक्षो बन्धुः।” महावीर-स्वामी निरापेक्ष बन्धु हैं। उन्हें हमसे कोई अपेक्षा नहीं है। उनकी कोई मांग नहीं, अभिलाषा नहीं। वे तो पूर्णतया अनापेक्ष भाव से दे रहे हैं। किसी हेतु से प्रेरित नहीं हैं, कोई कारण नहीं। भगवान् की करुणा कारण के अभाव में भी अबाध गति से बहती जा रही है।

संसार में इससे विपरीत ही देखने को मिलता है। हर व्यक्ति को कुछ न कुछ अपेक्षा रहती है। परिवार, परस्पर में स्नेह-सद्भावना का केन्द्र है, किन्तु पुत्र की अपेक्षा है कि पिता उसके लिए सब कुछ करे। जीवन निर्माण का पूरा दायित्व है उनका। इतिहास प्रसिद्ध पुत्र कुणिक ने साम्राज्य के सिंहासन की अपेक्षा-पूर्ति के लिए अपने पिता को जेल में डाल दिया।

पिता की अपेक्षा है—पुत्र उनकी सेवा करे, वृद्धावस्था में अच्छी तरह से संभाले। पति की अपेक्षा है—पत्नी मुस्कराते हुए द्वार पर स्वागत करे। पत्नी की अपेक्षा है—पति घर पर आते हैं, प्रेम से बात करें, गुस्सा न करें। मेरे जीवन का भी कुछ मूल्य है। मनचाहा दहेज न मिला तो क्या बीतती है नवविवाहिता पर? अखबार के पृष्ठ रंगे रहते हैं दुर्घटनाओं की खबरों से।

गुरु का शिष्य के प्रति स्नेह और शिष्य का गुरु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण सहज और स्वभाविक है।

### अपेक्षा भरा खेल

शिष्य अगर कामना रखता है कि गुरु का एकमात्र प्रिय-पात्र मैं ही बना रहूँ, मैं गुरु से भी महान् हूँ, तो इस अहं-पूजा की अपेक्षा में गुरु और संघ के विनाश के प्रयत्न हुए हैं देवदत्त और गौशालक के रूप में। उनकी अपेक्षा घृणित विराधना बन गई।

कभी-कभी गुरु अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करने का भाव शिष्य में भरता है। उसके लिए एक शिष्य की श्रेष्ठता को उभारने के लिए दूसरों की श्रेष्ठता को बढ़ने नहीं देता। एकलव्य के साथ यही तो हुआ है। अपेक्षाओं से भरा है यह खेल।

किससे अपेक्षा नहीं है? कोई मेहमान घर पर आए हों तो देखते हैं कि क्या उपहार लाए हैं? अच्छे-अच्छे उपहार की अपेक्षा है मेहमान से।

किसी के यहाँ मेहमान बनकर गए, तब भी अपेक्षा है कि अच्छा-खासा स्वागत होना चाहिए। बढ़िया भोजन होना चाहिए।

परिवार, सगे-संबंधी, मित्र, पड़ोसी, अतिथि, समाज—सबसे अपेक्षा है, प्रश्न है—क्या तुमसे भी किसी को अपेक्षा हो सकती है? क्या तुमने उसे पूरा किया है?

तुम्हें जीवन मिला, चैतन्य हो तुम । किसको धन्यवाद दिया ? रात्रि सोने के बाद सुबह उठे—किसके प्रति अनुग्रह प्रकट किया ? बहुत से लोग हैं, जो सोने के बाद जगे नहीं; तुम जगे हो । स्वस्थ शरीर, अच्छी शिक्षा, अच्छा परिवार, अच्छे संस्कार, महान् संस्कृति एवं धर्म मिला है । बहुत कुछ मिला है, और अनायास मिला है । कभी श्रद्धा जगी, अनुग्रह प्रकट हुआ ? “मैं बहुत अनुगृहीत हूँ” कभी उल्लेख किया ? न हमारी अपेक्षाओं के पूरा होने का सुख अनुभव किया, न हमने अपेक्षाओं की पूर्ति के दायित्व को पूरा किया । सब नकारात्मक है । जीवन का कोई पृष्ठ सकारात्मक नहीं बन पाया । वह प्रभु महावीर ही हैं, जिन्हें कोई अपेक्षा नहीं है । अपेक्षा नहीं है, इसका मतलब यह नहीं कि उपेक्षा की है, नहीं देने के लिए कोई बहाना खोजा है । सुपात्र-कुपात्र का कोई विकल्प नहीं उठा है । योग्यता-अयोग्यता की भी शर्त नहीं रखी है । अपने और बेगाने की भी रेखा नहीं खींची है । पवित्रता, श्रेष्ठता, उच्चता, ज्येष्ठता, आदि के किसी भी माप-दण्ड के आधार पर अनुक्रम बनाया है, ऐसा कुछ भी नहीं है ।

### निरपेक्ष-दान

वह तो परमकृपालु हैं, परम कारुणिक हैं । जो पाया, उसे लुटाया । सब कुछ पाया, सर्वस्व लुटाया । किसी के निमंत्रण की अपेक्षा नहीं की । आकस्मिक रूप से, स्वयं आयाचित रूप से देते रहे । निरपेक्ष भाव से देते रहे ।

हम अपनी भाषा में ‘देना’ कहते हैं, किन्तु वे महासूर्य हैं जो प्रकाश विकीर्ण करते रहे । वे महामेघ की तरह बरसते रहे । वे पावन गंगा हैं—बहते रहे । वे निरालम्ब आकाश हैं—छाए रहे । वे पुंडरीक हैं—सुगंध से भरे रहे । यह सब कुछ हुआ—कल्पनाएँ अधूरी रह जाती हैं उन्हें बताने के लिए । विचार अधूरे हैं—सोचने के लिए । भावों में भी वे समा नहीं पा रहे हैं । विचारों में व्यक्त नहीं हो पा रहे हैं । असीम कल्पनाएँ उसका अवलोकन कर नहीं पातीं । भक्त को केवल इतना ही परिबोध हो रहा है कि उससे सब कुछ, पर उसने चाहा कुछ भी नहीं । वे निरपेक्ष बन्धु हैं, वे मेरे अपने हैं ।

ऐसे प्रभु ! मेरी आँखों में समा जाओ । मैं तुम्हें बाहर कहाँ देखूँ, कहाँ दूँदूँ ? तुम बहुत गहरे अन्तर में विराजमान रहो ।

### “उपसंहार”

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या भागेन्दुना कृतम् ।

यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥

भगवान् महावीर का यह आठ श्लोकों वाला स्तोत्र, भागचन्द्र ने बड़ी भक्ति के साथ बनाया है । जो साधक इस स्तोत्र का पाठ करेगा अथवा सुनेगा; वह परम गति को प्राप्त करेगा ।

# अमराष्टकम्

—प्रोफेसर राममोहन दास

एम्. ए. पी. एच्. डी., डी. लिट्

छन्द : भुजंगप्रयात

अरागः अद्वेषः अकोपः अचिन्तः,  
अरोगः अभोगः अदीनः अहीनः ।  
सदा निःस्पृहो भावलीनः समाधौ,  
जितक्षोभमाया ममत्वादिदोषः ॥ १ ॥

राग, द्वेष, कोप, चिन्ता, रोग, भोग, दीनता, हीनता आदि समस्त विकारों से मुक्त, सदैव निःस्पृह, समाधि में लीन तथा क्षोभ, माया, ममत्व आदि दोषों के (उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज) विजेता थे ।

प्रशान्तः प्रबुद्धः सदात्मानुरागी,  
अनासक्तयोगी विद्योगि-स्व-बन्धुः ।  
जराजन्मदावानलवारिवाहः  
करे दंड-धारी दयापूर्णाचित्तः ॥ २ ॥

वे प्रशान्त, प्रबुद्ध तथा सदैव आत्मप्रेमी थे । आसक्तिरहित योग-साधक एवं दीन-दुःखियों के बंधु थे । जरा एवं जन्मरूपी दावानल को शान्त करने वाले मेघ थे । हाथ में सदैव दण्ड धारण करते हुए भी उनका हृदय करुणा से परिपूर्ण था ।

निरीहः अमानी गुणागार-रूपः,  
जगतपारकर्ता महान्नाविकोऽसौ ।  
प्रसन्नाननः सर्वनाथः प्रकृष्टः  
सदा सज्जनानन्ददाता दयालुः ॥ ३ ॥

वे निराकांक्ष, निरभिमान, गुणों के आगार तथा संसार-सागर से पार कराने वाले महान् नाविक थे । सदा प्रसन्नमुख, सबके रक्षक, श्रेष्ठ, दयालु तथा सज्जनों के सदैव आनन्ददाता थे ।

निरातंकवृत्तिः सदानन्द - भोक्ता,  
 प्रगल्भः पुनीतः अहंभाव हीनः ।  
 स्वयं लब्धमुक्तिः नराणां च नेता,  
 जगत्कालकूटात् च त्राता महेशः ॥ ४ ॥

वे सदैव निर्भय रहने वाले तथा दूसरों को निर्भयता प्रदान करने वाले थे । वे सर्वदा आत्मानन्द का अनुभव करते थे । वाक्पटु, पवित्र, निरहंकारी, मुक्त-पथ के पथिक, मुक्ति-पथ के पथ-प्रदर्शक तथा संसार के विषम-विष से वे सबकी रक्षा करने वाले थे ।

न लोष्टे विरक्तिः न रत्नेऽनुरक्तिः,  
 न रंके घृणा नापि राज्ञि प्रसक्तिः ।  
 मदीयं त्वदीयं न कश्चिद् विचारः,  
 सदा साम्ययोगी सदैवैकदर्शी ॥ ५ ॥

उनकी न तो मिट्टी के ढेले में विरक्ति थी और न ही रत्न में आसक्ति । न दीन-हीन के प्रति घृणा थी और न ही शासकों के प्रति अनुराग । अपने-पराये का भाव नहीं रखते हुए वे सदा साधक एवं समदर्शी थे ।

न वस्त्राभिलाषी न चाकाशवासीः  
 स्वयं मध्यमार्गी विचारे प्रचारे ।  
 उदारः वदान्यः सदा तत्त्वद्रष्टा,  
 हितैषी परार्थानुचिन्तानिमग्नः ॥ ६ ॥

वे न वस्त्रों के अभिलाषी थे और न सर्वथा दिगंबर । आचार-विचार एवं प्रचार में वे मध्यमार्गी, उदार, महान् दानी और तत्त्वज्ञ थे तथा दूसरों की ही हित चिन्ता में सतत निमग्न रहते थे ।

तदीया सुकीर्तिः दिशः पूरयित्वा  
 प्रयाता दिवं गीयमानाऽप्सरोभिः ।  
 शरीरे विनष्टे यशःकाय-रूपे,  
 जरामृत्युभीत्या विमुक्तः स्थितोऽसि ॥ ७ ॥

उनका यश दिशाओं को व्याप्त करने के अनन्तर स्वर्ग में पहुँचा, जहाँ की देवाङ्गनाएँ उसे निरंतर आदरपूर्वक गाती रहती हैं । पार्थिव शरीर तो भले ही विनष्ट हो गया किन्तु वे यशः शरीर से वर्तमान बुढ़ापा और मृत्यु के भय के सर्वथा मुक्त हैं ।

न धर्मे न चार्थे न कामे न मोक्षे,  
न लोकैषणायां मदीया प्रवृत्तिः ।

इयं मेऽभिलाषा भवत्पादमूले

अनन्यानुरागः भवेद् बद्ध-मूलः ॥ ८ ॥

मेरी न धर्म में, न अर्थ में, न काम में, न मोक्ष में और न लोकैषणा में प्रवृत्ति है। मेरी एकमात्र यही आकांक्षा है कि आपके चरणों में मेरा दृढ़ एवं अनन्य अनुराग बना रहे।

छन्द : अनुष्टुप्

अमराष्टकमिदं पुण्यं, सर्व - पाप-प्रमोचकम् ।

यः पठेत् पाठयेत् गायेत् स लभते परमं पदम् ॥

यह अमराष्टक पवित्र एवं सभी पापों से मुक्ति-प्रदाता है। जो भी व्यक्ति इसे पढ़ेगा, पढ़वायेगा अथवा गायेगा, वह परम पद को प्राप्त होगा।



# चन्दनाष्टकम्

—प्रोफेसर राममोहन दास

एम्. ए., पी. एच्-डी., डी. लिट

छन्द : मालिनी

भगवति जिनराजे मोक्षमार्गे प्रविष्टे  
निखिल-जगति व्याप्तं घोर नैशान्धकारम् ।  
निजतरल-प्रभाभिः नाशयन्ती सुजाता  
सकलजन-मनोज्ञा भास्वरा अंशुमाला ॥ १ ॥

भगवान् महावीर के निर्वाण के अनन्तर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त रात्रि के घोर अंधकार को अपनी तरल प्रभा से वदीर्ण करती हुई, सम्पूर्ण जनता को आनंदित करने वाली भास्वर किरणों की माला (आचार्य श्री चंदना जी) का शुभ प्रादुर्भाव हुआ ।

अमरमुनि सुशिष्या तस्य सन्देशवाहा  
मलयगिरिसुकन्धा चन्दनानामधेया ।  
सकलजनसमाजे दह्यमाने त्रितापैः  
जलधर-धरिताम्भोवर्षिनीलाभ्र-माला ॥ २ ॥

श्री अमरमुनि के संदेशों को सर्वत्र प्रचारित करने वाली उनकी सुशिष्या तथा मलयाचल की सुपुत्री आचार्य श्री चन्दना त्रितापों (दैहिक, दैविक एवं भौतिक) से जलते हुए सम्पूर्ण मानव समाज के लिए जल से परिपूर्ण काली घटा के सदृश वर्षा करने वाली है ।

अमलयवलवासा पूत-चारित्र्यमूर्तिः  
सदयहृदयराज्ञी सर्वदा स्मेरमुद्रा ।  
तव मुखमकलंकं वीक्ष्य भक्तः चकोरः  
भवति विगततृष्णः लब्धदिव्यानुभूतिः ॥ ३ ॥

निर्मल एवं स्वेत वस्त्र धारण करने वाली, पवित्र आचरण की प्रतिमा, दयापूर्ण हृदय की स्वामिनी तथा सदैव मुस्कानयुक्त मुखमण्डल वाली आचार्य श्री चंदना जी के उज्ज्वल मुख को देखकर चकोर की भाँति भक्त दिव्य अनुभूति कर कर सभी प्रकार की तृष्णाओं से मुक्त हो जाता है ।

मनसि वचसि कार्ये पुण्यपीयूषपूर्णा  
सकलजनमनांसि सर्वदा प्रीणयन्ती ।  
परदुःखपरमाणुं पर्वतं मन्यमाना  
सतत-हरणशीला सर्वथाऽनन्यचिन्ता ॥ ४ ॥

मन, वाणी तथा कर्म में पुण्यामृत को धारण करने वाली, समस्त लोगों के मन को सदा प्रसन्न रखने वाली, दूसरों के छोटे से छोटे दुःख को भी पर्वत के समान बड़ा समझकर, अनन्यचित्त से उसे पूर्ण रूप से दूर करने में आचार्य श्री सदा तत्पर रहती है ।

बहुजनहितकाम्या खिद्यमाना सदैव  
सकलविकलसेवा-पूतकार्ये निमग्ना ।  
विचरति नहि चिन्ता स्वात्ममोक्षादिलाभे  
परहित निरता सा त्यक्त स्वार्थावबोधा ॥ ५ ॥

अनेक लोगों के हित के लिए सदा स्वयं कष्ट उठाने वाली तथा सम्पूर्ण दुःखी प्राणियों की सेवा के पवित्र कार्य में निरत आचार्य श्री को मोक्षादि के विषय में कोई चिन्ता नहीं है तथा स्वार्थ-सिद्धि का विचार छोड़कर सदैव परहित में लगी रहती है ।

प्रकटितपरप्रेमा निःस्पृहाऽताम्रचक्षुः  
शमित विकृतिवाताः यत्र नान्तर्बहिश्च ।  
निहित-निखिल मोहा दग्धकोपादिदोषा  
गलिततिमिरमाला शुभ्रतेजःप्रकाशा ॥ ६ ॥

दूसरों पर प्रेम रखने वाली, स्वयं निःस्पृहा आचार्य श्री के नेत्र स्निग्ध हैं, इन्होंने विकारों की आँधी को शान्त कर दिया है, इनका बाहर-भीतर एक समान है, इन्होंने समस्त मोहादि को नष्ट कर कोप आदि दोषों को दूर कर, अज्ञान के अंधकार को छिन्न-भिन्न कर दिया है तथा निर्मल तेज से सदा प्रकाशित हैं ।

दुरितदहनदक्षा पादपद्माश्रितानां  
परहितकरणाय प्राणप्रच्छेद-प्रीता ।



धवलकमलशोभा ज्ञानपुञ्ज-स्वरूपा  
प्रणतमवतु मां सा मानसी राजहंसी ॥ ७ ॥

अपने चरण कमलों का आश्रय लेने वालों के पापों को नष्ट करने में समर्थ आचार्य श्री दूसरों का हित करने में अपने प्राणों को भी प्रसन्नता पूर्वक न्योछावर करने वाली है। वे श्वेतकमल-सी सुशोभित होने वाली मानसरोवर की राजहंसी तथा शरीरधारिणी ज्ञानराशि हैं।

गहनतिमिरपूर्णा मोहवश्या मतिर्मे  
सकलगुणसमष्टिः तेऽतिशायि स्वरूपम् ।  
तदपि तव पदाब्जेऽनन्यभक्तिः बलान्मां  
विविशयति प्रदातुं शब्दपुष्पोपहारम् ॥ ८ ॥

मेरी बुद्धि घोर अज्ञान-अंधकार से पूर्ण तथा मोह के वशीभूत है। आप सभी गुणों की समष्टि हैं तथा आपका स्वरूप वर्णन के परे हैं फिर भी आपके चरण कमलों में मेरी अनन्यभक्ति मुझे शब्द-पुष्पों का उपहार देने के लिए बलात् प्रेरित कर रही है।

छन्द : अनुष्टुप्

चन्दनाष्टकमिदं पुण्यं, भावश्रद्धासमन्वितम् ।  
ये पठन्ति नरा भक्त्या, तेषां सर्वत्र मंगलम् ॥

भाव एवं श्रद्धायुक्त इस पवित्र चन्दनाष्टक को जो भी व्यक्ति भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं उनका सर्वत्र कल्याण होता है।



महावीर अतिवीर जिनेश्वर,  
वर्द्धमान जिनराज महान् ।  
गुण अनन्त, हर गुण अनन्त  
नहीं अन्त का कहीं निशान ॥

हे अनन्त ज्योतिर्मय भगवन् !  
अन्तर में तव ज्योति जले  
जीवन का कण-कण तेरे ही  
दिव्य रूप में सदा ढले ॥

वीतराग जिनराज वीर की,  
जन-मन-मोहन अमृतवाणी ।  
अंधकार में ज्योति-किरण है,  
सुख-दुःख में हर क्षण कल्याणी ॥

महावीर का अनेकांत है,  
भिन्न-भिन्न में अभिन्नता ।  
छोड़ कदाग्रह मत-पंथों का  
करो द्वैत की दूर अंधता ॥

महाश्रमण महावीर जिनेश्वर,  
श्री चरणों में शत-शत वंदन ।  
अंतर्मन के कण-कण से  
क्षण-क्षण में नितनव अभिनंदन ॥

—उपाध्याय अमरमुनि